www.kahaar.in

ISSN (p): 2394-3912
ISSN (e): 2395-9369
त्रैमासिक 8 (4) अक्टूबर – दिसम्बर, 2021
प्रिंट कापी : रूपये 50/–
ऑनलाइन : रूपये 25/–

कहार

जन विज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

KAHAAR

A multilingual magazine for common people

प्रकाशक
प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसाइटी, लखनऊ
(www.phssfoundation.org)
सह–प्रकाशक
पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ
(www.prithvipur.org)
बचपन क्रिएशन्स
(www.bachpanexpress.com, www.bachpancreations.com)
सोसायटी फॉर इन्वायरमेन्ट एण्ड पब्लिक हेल्थ (सेफ), लखनऊ

Prof. H. S. Srivastava Foundation for Science & Society, Lucknow

PHSS Foundation Awardees for Year 2020-21

A meeting of the selection Committee to decide the Awardees of PHSS Foundation Awards (2020-21) was held on **21st November, 2021** at **CSIR-National Botanical Research Institute, Rana Pratap Marg, Lucknow-226001 both in online and physical mode**. The following nominees were unanimously selected for different PHSS Awards for Year 2020-21.

Name of the Award	Name of the Awardees
PHSS Foundation Life Time Achievement Award	**Professor Sudhir Kumar Sopory**, Former Vice Chancellor, JNU, New Delhi
PHSS Foundation Award for Social Contribution	**Dr. Gangula V. Ramanjaneyulu,** Exe. Director, Centre for Sustainable Agriculture, Hyderabad
PHSS Foundation Award For Science Communication	**Dr. Manoj Kumar Patairiya,** Former Adviser/Scientist G, SERC, DST, New Delhi **&** **Mr. Birat Raja Padhan**, Distt. Consultant, Odisha
PHSS Foundation Woman Leadership Award	**Dr. Paramjit Khurana,** Professor University of Delhi, Delhi **&** **Dr. Renu Tripathi,** Chief Scientist, CSIR-CDRI, Lucknow
PHSS Foundation Young Scientist Award (a) Physical Sciences and Engineering	**Dr. Satyanarayan Patel,** Assistant Professor, IIT, Indore
PHSS Foundation Young Scientist Award (b) Life Sciences, Environmental Sciences and Agricultural Sciences	**Dr. CD Mohan,** Assistant Professor Department of Studies in Molecular Biology, University of Mysore, Manasagangotri Mysore

कहार

जन विज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

त्रैमासिक 8 (4) अक्टूबर – दिसंबर, 2021

प्रधान संपादक
प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह, लखनऊ

सम्पादक
डॉ. राम स्नेही द्विवेदी
प्रो. गोविन्द जी पाण्डेय
डॉ. संजय द्विवेदी

सह-सम्पादक
डॉ. अरविन्द कुमार सिंह, लखनऊ
डॉ. मानस गोस्वामी, तिरूबररूर
डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह, अमरकटँक
डॉ. सीमा मिश्रा, गोरखपुर
श्री आकाश वर्मा, लखनऊ
श्री नन्द किशोर गुप्ता, देवघर
डॉ. पीयूष गोयल, नई दिल्ली
डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, मऊ
डॉ. राजेश वाजपेयी, लखनऊ
श्री आदेश सिंह, बसई, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल
डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, बालापार, गोरखपुर
डॉ. रामचेत चौधरी, गोरखपुर
प्रोफेसर राकेश सिंह सेंगर, मेरठ
डॉ. सुमन कुमार सिन्हा, गोरखपुर
प्रोफेसर रामचन्द्र, लखनऊ
डॉ. अनुज कुमार सक्सेना, सीतापुर
डॉ. अर्चना (सेंगर) सिंह, कनिकट (यूएस.ए.)

सलाहकार मण्डल
प्रोफेसर सरोज कान्त बारिक, लखनऊ
प्रोफेसर प्रहलाद के. सेठ, लखनऊ
प्रोफेसर प्रफुल्ल वी. साने, जलगाँव
प्रोफेसर रामदेव शुक्ल, गोरखपुर
प्रोफेसर शशि भूषण अग्रवाल, वाराणसी
डॉ. एस.सी. शर्मा, लखनऊ
प्रोफेसर सूर्यकान्त, लखनऊ
प्रो. अरूण पाण्डेय, भोपाल
डॉ. रूद्रदेव त्रिपाठी, लखनऊ
प्रोफेसर रणवीर दहिया, रोहतक
प्रोफेसर एन. रघुराम, दिल्ली
प्रोफेसर उमेश वशिष्ठ, लखनऊ
इ. रविन्द्र कुमार श्रीवास्तव, लखनऊ
डॉ. सिराज वजीह, गोरखपुर
डॉ. मधु भारद्वाज, लखनऊ
प्रो. उपेन्द्र नाथ द्विवेदी, लखनऊ
प्रोफेसर मालविका श्रीवास्तव, गोरखपुर
डॉ. निहारिका शंकर, नोएडा
श्री सुधीर शाही, तुर्क पट्टी
श्री उपेन्द्र प्रताप राव, दुदही
इं. तरूण सेंगर, इरविन अमेरिका
डॉ. पूनम सेंगर, चण्डीगढ़
श्री अविनाश जैसवाल, दुदही

आवरण फोटो
श्री प्रकाशवीर सिंह, लखनऊ
प्रबन्ध-सम्पादक
श्री अंचल जैन, लखनऊ
सोशल मीडिया
श्री रंजीत शर्मा, लखनऊ
श्री कृष्णानंद सिंह
श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह, लखनऊ

संपादकीय पता
04, पहली मंजिल, एल्डिको एक्सप्रेस प्लाजा, शहीद पथ उतरेठिया, रायबरेली रोड, लखनऊ–226 025 भारत
ई–मेल : phssoffice@gmail.com/dr.ranapratap59@gmail.com
वेबसाइट : www.kahaar.in
https://www.facebook/kahaarmagazine.com

सहयोग राशि	प्रिंटकापी	ऑनलाइन
एक प्रति	: 50 रूपये	25 रूपये
वार्षिक	: 180 रूपये	80 रूपये

(प्रिंटकापी की कम से कम 100 प्रतियों का ही आर्डर स्वीकार किया जायेगा।)

सहयोग राशि 'प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटीः लखनऊ' के नाम भेजें।
खाता संख्या– 2900101002506, कैनरा बैंक, बी.बी.ए. विश्वविद्यालय, लखनऊ
IFSC Code - CNRB-0002900

घोषणा

लेखकों के विचार से 'कहार' की टीम का सहमत होना जरूरी नहीं। किसी रचना में उल्लेखित तथ्यात्मक भूल के लिए 'कहार' की टीम जिम्मेदार नहीं होगी।

लेखकों के लिए

वैचारिक रचनाओं में आवश्यक संदर्भ भी दें एवं इन संदर्भों का विस्तार रचना के अन्त में प्रस्तुत करें। अंग्रेजी रचनाओं का हिन्दी तथा हिन्दी सहित अन्य भाषाओं की रचनाओं का अंग्रेजी या हिन्दी में सारांश दें। मौलिक रचनाओं के साथ रचना के स्वलिखित, मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाणपत्र दें। लेखक पासपोर्ट साइज फोटो भी भेंजे। रचनाऐं English के Times New Roman (12 Point) और हिन्दी के लिए कृति देव 10 में Word Format (Window 2003) में टाइप करें। तस्वीरें, चित्र, रेखाचित्र आदि PDF Format में भेंजे।

विज्ञापन दाताओं के लिए

विज्ञापन की विषय वस्तु के साथ ही भुगतान 'प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटी, लखनऊ' के नाम मल्टीसिटी चेक या बैंक ड्राफ्ट द्वारा सम्पादकीय पते पर भेजें। ऑनलाइन पेमेंट उपरोक्त* बैंक खाते में कर सकते है।

रूपये 6000/– पूरा पृष्ठ (सादा) रूपये 4000/– आधा पृष्ठ (सादा)
रूपये 10000/– पूरा पृष्ठ (रंगीन) रूपये 6000/– आधा पृष्ठ (रंगीन)

For Advertisers

Please send payment in form of DD or multicity cheques in favour of 'Professor H.S. Srivastava Foundation for Science and Society' Payable at Lucknow along with subscription forms or Advertisement draft. Online Payment can also be made in the account marked above as*.

Rs. 6000/- Full Page (B/W) Rs. 4000/- Half Page (B/W)
Rs. 10000/- Full Page (Color) Rs. 6000/- Half Page (Color

कहार एक पारम्परिक मनुष्य वाहक के लिए प्राचीन देशज सम्बोधन है। कहार की तरह ही यह पत्रिका जानकारियों एवं लोगों के बीच सेतु बनने की कोशिश कर रही है।

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	विषय		पृष्ठ संख्या
01	सम्पादकीय	प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह	01
02	Editorial	Prof. Rana Pratap Singh	03
03	रक्त–जनित हेपेटाइटिस की खोजों पर मिला है इस वर्ष का मेडिसीन या फिजियोलॉजी का नोबेल पुरस्कार	डॉ0 यूसुफ़ अख़्तर	05
04	जलवायु परिवर्तन के दौर में जैविक खेती की प्रासंगिकता : विधि एवं लाभ	डॉ0 शिव मंगल प्रसाद, श्री पंकज कुमार सिंह, श्रीमती निकिता कुमारी एवं डॉ0 रंजय कुमार सिंह	07
05	बाल कविता– मैं	कुमारी अनिका मिश्रा	09
06	वर्मी कम्पोस्टः केंचुए का कृषि में महत्त्वपूर्ण योगदान	डॉ0 बरखा वैश्य, श्री वैभव श्रीवास्तव, डॉ0 राजीव प्रताप सिंह	10
07	''प्लास्टिक ट्रे'' शंकर सब्जियों की उत्तम पौध तैयार	श्री सूर्य प्रताप सिंह, श्रीमती वर्षा रानी एवं प्रो0 आर.एस. सेंगर	12
08	अन्नदाता की आये बढ़ाने में लाभकारी ड्रोन	डॉ. आर.एस. सेंगर, कृशानु एवं वर्षा रानी	14
09	अवधी कविता– बनारस	अज्ञात	17
10	Upgrading Farmers Involved in Agriculture Practices	Shivom Singh and Kajal S. Rathore	18
11	हरियाणवी रागनी– शहीद भगत सिंह	प्रो0 रणबीर दहिया, रोहतक	19
12	Methods for Reduction of Arsenic from Cooked Rice	Apoorv Gupta, Ravi Kumar Tiwari, Dr. Sanjay Dwivedi, Dr. Seema Mishra	20
13	Extraterrestrial Radiation Dynamics Over Mango Orchards	Tarun Adak, Vinod Kumar Singh and Naresh Babu	28
14	Foldscope: An Eye Behind The Microscopic World	Rahul Negi, Dr. Rahul Kunwar Singh	31

सम्पादकीय

वैज्ञानिक दृष्टिकोण; आपदाएं और पर्यावरण प्रबन्धन

एक दौर ऐसा भी आया कि कोरोना की बार-बार उठ रही लहरों ने भारत सहित अनेक देशों की विशाल आबादी को सदमे और लाचारी से झकझोर कर रख दिया। कोरोना से बचने के लिए लंबे समय से प्रतीक्षित टीका आ गया है। टीके का सही असर आंकने में अभी समय लगेगा, हालाँकि विशेषज्ञ अभी टीके को ही कोरोना से लड़ने का प्रमुख हथियार मान रहे हैं। भारत जैसे देश में टीके की कीमत देकर गरीब और कम जागरूक लोगों का टीकाकरण कराना कठिन है। ऐसे में भारत सरकार ने सबको निःशुल्क टीका उपलब्ध कराने का फैसला लिया है, उसका स्वागत होना चाहिए। ऐसे कदम अन्य देशों से भी अपेक्षित हैं। महामारी राष्ट्रीय प्रबंधन का विषय है, इसलिए इसके प्रबंधन के लिए आम लोगों पर अधिक भार डालना व्यावहारिक नहीं है। अब दुनिया भर में कोरोना वायरस के अनेकों आक्रामक म्यूटेंट बन गए हैं, जो पिछले दिनों के खुले विश्व में यात्रियों के साथ-साथ एक देश से दूसरे देश और एक जगह से दूसरी जगह आते जाते रहे और बीमारी को फैलाते रहे। अनेक स्थानीय कारणों से भी लोग चाहे अनचाहे रोग ग्रस्त लोगों के संपर्क में आ गए, जैसे चुनावों, धार्मिक जुटानों, सांस्कृतिक त्योहारों, विवाह समारोहों और सार्वजनिक रैलियों में बड़े पैमाने पर लोगों के पास-पास आने से इसके त्वरित फैलाव की अधिक संभावनाएं बनी, जो इस महामारी की दूसरी लहर के उछाल और मौतों में बहुत बड़ा कारण बनीं ।

कोरोना काल में यह अधिक परिलक्षित हुआ है, कि हमारे समाज और हमारे रिश्तों में प्रेम और त्याग का अभाव बढ़ रहा है। हमारी मानवीय चिंताएं और सहयोग की भावनाएं बड़े पैमाने पर मरती जा रही हैं। हमने अपने आत्मीयों,करीबियों और जरूरतमंदों से उनके संकट के क्षणों में दूरी बना ली और उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया। हालाँकि सहयोग करने वाले हाथ भी सक्रिय रहे, पर उतने नहीं जितने होने चाहिए थे । क्या यह सब मात्र डर, भ्रम और स्वार्थ के चलते हो रहा है, या इसका मुख्य कारण हमारी संस्कृति में व्यक्तिवाद, स्वार्थ और अमानवीयता का बढ़ता प्रभाव है ? क्या हमारे व्यक्तित्व में, हमारी संस्थाओं में, हमारे समाज में तथा हमारी व्यवस्थाओं के वैचारिक विमर्श में स्वार्थपरता, अवैज्ञानिकता, अस्पष्टता, आपाधापी तथा गैर पेशेवरपन बढ़ रहे हैं ? इस पर गंभीरता से बिना किसी वैचारिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पक्षधरता के विचार किया जाय तो हमें चिंतित होना पड़ेगा। पिछले कोरोना उफान के पहले का लाक डाउन कोरोना के पहले लहर में इसके प्रसार को रोकने में अत्यंत प्रभावी रहा था, तब भी भारत सहित अनेक देशों की सरकारें आर्थिक गतिविधियों के दबाव में दूसरी लहर में लाक डॉउन को लंबे समय तक टालती रहीं। हाँलांकि लाकडाउन आखिर लगाना ही पड़ा और तब कोरोना के आकड़े घटने शुरू हुए। दूसरी लहर की आपाधापी कुछ तथ्यों की ओर इंगित करती है, जिन पर हमें विचार करना चाहिए।

1). हमने अपने पुराने अनुभवों को विश्लेषित नहीं किया और समझ नहीं सके ,कि महामारी की पहली लहर में भारत के कोविड प्रबंधन की सफलता में लॉकडाउन एक महत्वपूर्ण कुंजी थी। जबकि पिछली बार और इस बार भी हमारे राजनीतिक दल, व्यापारी और नागरिक समाज लॉकडाउन और कोविड से बचने के लिए तय प्रावधानों पर सख्ती के मुद्दों पर बटें हुए नजर आए तथा महामारी के संकट का राजनैतिक लाभ लेने के लिए वस्तुस्थितियों को तोड़ मरोड़ कर अपने स्वार्थों के हिसाब से बयान देते रहे।

2). शासन प्रशासन तथा जनता की कार्यप्रणाली में वैज्ञानिक चेतना तथा पेशेवर कार्य प्रणाली का नितांत अभाव रहा तथा ऐसा लगा कि तदर्थ कार्य पद्धतियाँ हमारे जीवन दृष्टि का हिस्सा बनी हुई हैं। इसलिए कोरोना की दूसरी लहर की आपाधापी के लिए सरकारों की प्रबंधन प्रणाली के साथ-साथ विपक्ष और नागरिक समाज, अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण तथा राजनैतिक अदूरदर्शिता को भी कठघरे में खड़ा करना होगा। बड़ी आबादी और आर्थिक अभावों के बावजूद भारत में कोरोना का अपादा प्रबन्धन बेहतर माना जाना चाहिए। जिन अन्य देशों और प्रदेशों में शासकीय और नागरिक प्रबंधन बेहतर रहा, वहां महामारी का असर भी कम हुआ । हमें अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक और संस्थागत विचार प्रणाली और कार्य प्रणाली में वैज्ञानिक दृष्टिकोण राष्ट्रीय नैतिकता एवं पेशेवर प्रबन्धन को बढ़ाना होगा तभी हम एक सम्यक और तर्कसंगत राष्ट्रीय संस्कृति तथा एक आधुनिक, आत्मनिर्भर, खुशहाल और धारणीय राष्ट्र विकसित कर पाएँगें।

दूसरी कोरोना लहर में लॉकडाउन में हुई देरी की निर्णयात्मक चूक ने लगभग दो महीनों तक अस्पतालों, गलियों, श्मशानों और कब्रिस्तानों में अप्रत्याशित और अभूतपूर्व हाहाकार मचा दिया, इस महामारी की पिछली

लहर में कुछ ऐसा ही हो हल्ला प्रवासी मजदूरों के पलायन और पैदल यात्रा के दौरान भी मचा था। इससे हमारे ग्रामीण अर्थतन्त्र की बदहाली उस दौर में उल्लेखनीय रूप से उजागर हुई ।

मानवीय सभ्यता पृथ्वी पर एक नए मानवयुग में आ गयी है, जहाँ वह अपनी जननी पृथ्वी और उसकी प्रकृति से सीधे मुठभेड़ कर रही है। विज्ञान से उपजी तकनीकों, औजारों और अत्यंत विनाशक हथियारों से लैस होकर मनुष्य की सत्ता पर काबिज सताधारी समूहों के समूह ने ऐसा मान लिया है, कि वे पृथ्वी और प्रकृति की उन सभी अधिक ताकतवर हैं। पर ऐसा है, नहीं दरअसल विज्ञान को हमने अधिकतर तकनीकों, यंत्रो और अपने उपभोग के समानों के रूप में ही देखा और जाना है। ऐसा इसलिए हुआ है, कि विज्ञान को भी सत्तातन्त्र और अर्थतन्त्र ने लोकतन्त्र पर काबिज होकर अपनी पकड़ मजबूत करने और व्यक्तिगत तथा समूहगत लाभ के लिए इस्तेमाल किया है। कोई भी ज्ञान सत्ता तन्त्र और अर्थतन्त्र से निरपेक्ष नही होता। व्यवस्था पर जिनका नियंत्रण होता है, वे ज्ञान के हर स्वरूप को नियंत्रित करते हैं। जनता को ज्ञान विज्ञान का समुचित लाभ तभी मिलेगा, जब वह अपनी दीर्घकालिक विकास आवश्यकताओं और धारणीय सुख के अवयवों को ठीक तरह से पहचान पायेगी और उसे अपने हित में संचालित कर पायेगी। ज्ञान विज्ञान का दर्शन और उसके कार्य प्रणाली की सही समझ जनता और उसके वंचित समूहों के धारणीय तथा प्रकृति संगत विकास के वाहक हो सकते हैं। विज्ञान को एक दर्शन और एक कार्य विधि के रूप में लोगों के बीच ले जाने का काम लम्बे समय से छूटा हुआ है। कोरोना जैसी आपदाएं हमें प्रेरित धारणीय दुनिया के विकास में अपना योगदानद दें। पृथ्वी और प्रकृति ने कई बार यह अहसास करा दिया है, कि वह उसे ढोती नहीं रहेगी, जो उसके पूरे जैविक – अजैविक तंत्र का पूरक नहीं बनेगा। वह पूरे प्राकृतिक जाल की जननी है और किसी एक या कुछ जीव समूहों के नष्ट हो जाने पर भी अपनी यात्रा को बाधित नहीं होने देगी। वर्तमान की जलवायु परिवर्तन की संकटपूर्ण स्थितियाँ और कोरोना महामारी जैसी भयावह स्थितियाँ हमें बार बार आगाह कर रही हैं, कि हम नहीं मानें तो पृथ्वी का विशाल और शक्तिशाली तंत्र मनुष्य को भी अपनी परिस्थितिकी से किसी न किसी तरह बाहर कर देगा। मनुष्य द्वारा निर्मित यह मानवयुग जिसे कलयुग भी कहा गया है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सम्यक, सार्थक और व्यापक फैलाव के न होने के कारण लगातार सामूहिक संकट की ओर बढ़ रहा है और हम सचेत नहीं हैं।

राणा प्रताप

(राणा प्रताप सिंह)
www.ranapratap.in

Editorial

Being unscientific costs heavy; A reminder of Pandemic times

The Corona crisis in repeated waves has shaken the world, the nation and the mind of billions and billions with shocks and helplessness. The long awaited vaccines have come. During the second wave of corona there was alarming upsurge in the infection and deaths. The experts have assigned multiple reasons for it. The more aggressive mutants of the Corona virus are mutating for its survival throughout the world and the various strains are getting transmitted with the travellers on the opening of lockdown. In addition to the genetic mutations in the causal agent of the disease, we had massive gatherings in religious activities, festivals, marriage celebrations and public rallies during the various state and local elections coinciding to the period of the second wave of this pandemic.

There are talks in the town and TV channels that responsibilities, relations and humanitarian concerns are dying in our societies due to severe ecosystem of towards the sick and infected persons fear, confusions, false propaganda and selfishness. The helping hands are requred in the crisis time. The Governments, after a long denial were compelled to opt for the lockdown which was avoided for a month or so due to the economic concerns.

The world is divided in the multiple political and geographical boundaries with different socioeconomic, cultural, educational and scientific temper of their societies. They have different perspectives of the governance systems and the civil societies which have responded to the crisis differently after a year of its existence.

Our behaviour to the infected people and their families and the economic sufferers of poverty and income loss have risen many unavoidable burning questions. Did we fail in developing a humanitarian mindset, socioeconomic adequacy, national character, professional honesty and a scientific ecosystem as a civil society and a governance system after seven decades of independent nation? What has hampered our preparedness and forecasts even after a year of this deadly pandemic? We can't escape from such questions, if want to prepare ourselves for the predicted third wave of corona and such impacts of the future pandemics, epidemics and other disasters. It is time to analyse, understand and prepare to address the reasons for such failures and bottlenecks of our understanding and working for further disasters as a country , a huge democracy and an active partner of the in the global future.

We are living in a human age with so many technological capabilities in the hand obtained through the underlying principles of Science and Engineering. Even then the origin and primary source of this devastating corona virus is not known as yet. The dominance of political and business interests over the interest of scientific learning with true scientific aptitude and societal concerns has limited the role of science in the society in this contemporary world possessing material oriented developmental pathway with wealth dominated economic ecosystem. It lacks scientific approaches for a sustainable developmental pathway which could have been more beneficial and long lasting with a wholistic perspective of social, economic and environmental sustainability approaches. The technology can be very useful if used for benefit of larger interest of people in place of individual luxuries.

The people in general believe that science is the source for the products and services for our comfort and the useful items we are getting around us is due to use of science and its technological capabilities utilised by the commercial setups and Industries. Only a small number of people understand that the role of science can be instrumental if adopted in social behaviour , cultural activities and addressing of the societal problems. We need to understand and spread the history, principles and methods and all the possible outcomes of science to develop a modern scientific outlook to manage our problems in a more systematic, pragmatic and rational way.

Let us understand that the Science is indeed evolving the universal principles to know the knowledge which can be most nearby the truth of an unknown. It is a procedure to explore the unknown , less known or even known happenings around us with a systematic set of investigations and queries and trying to understand the

causes and possible consequences of the happenings and observations in a more logical and universal manner. One can develop technology, machines and man made engineered usable from the scientific perspective, principles and procedures. However, we must realise that as the other knowledge systems, science is also not independent to the power game, politics, economic interests and governance perspectives . Like other knowledge systems Science is also governed by the interests of society, state and market as its regulatory forces. The governance system in entire world, as a principle of politics, has a mindset of using everything for its control and capital gain to achieve power in the next round and to bear the cost of its welfare programs.

The public must undestand and use science in its own benefit. Scientific aptitute can help us for more realistic planning more professional working and more chance of success in resolving our problems. Science as a phiosophy and procedure can help us a lot in our day to day affairs, our collective gains and evolution of our societies more humanistic and more sustainable in harmony with the earth's eco systems let us think and march a head with Science for the society.

Rana Pratap

(Rana Pratap Singh)
www.ranapratap.in

विज्ञान

रक्त–जनित हेपेटाइटिस की खोजों पर मिला है इस वर्ष का मेडिसीन या फिजियोलॉजी का नोबेल पुरस्कार

❑ डॉ. यूसुफ़ अख़्तर

इस वर्ष का नोबेल पुरस्कार उन तीन वैज्ञानिकों को प्रदान किया गया है, जिन्होंने रक्त–जनित हेपेटाइटिस के खिलाफ लड़ाई में निर्णायक योगदान दिया है, यह एक प्रमुख वैश्विक संक्रामक स्वास्थ्य समस्या है, जो दुनिया भर के लोगों में सिरोसिस और यकृत कैंसर का कारण बनती है। हार्वे जे. ऑल्टर, माइकल ह्यूटन और चार्ल्स एम. राइस ने वे मौलिक खोजें की जिसके कारण इस नए वायरस, हेपेटाइटिस–सी की सही पहचान हो सकी। इस काम से पहले, हेपेटाइटिस–ए और बी वायरस की खोज इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे, लेकिन रक्त–जनित हेपेटाइटिस के अधिकांश मामले अस्पष्टीकृत रहे। हेपेटाइटिस–सी वायरस की खोज ने क्रोनिक हेपेटाइटिस के शेष मामलों के कारण का पता लगाया और रक्त परीक्षण और नई दवाओं के आविष्कार का मार्ग प्रशस्त किया, जिसने आगे चलकर लाखों लोगों की जान बचाई है।

हेपेटाइटिस – मानव स्वास्थ्य के लिए एक वैश्विक ख़तरा

हेपेटाइटिस, यकृत और सूजन के लिए ग्रीक शब्दों के संयोजन से बना है। ये मुख्य रूप से वायरस के संक्रमण के कारण होता है, हालांकि शराब के अत्यधिक उपयोग, पर्यावरण प्रदुषण करने विषाक्त पदार्थों और ऑटोइम्यूनिटी भी इसके प्रमुख कारण हैं। 1940 में ही यह स्पष्ट हो गया था, कि संक्रामक हेपेटाइटिस के दो मुख्य प्रकार हैं। हेपेटाइटिस–ए नाम का पहला प्रकार, प्रदूषित पानी या भोजन से फैलता है, और आमतौर पर रोगी पर इसका दीर्घकालिक प्रभाव नहीं होता है। दूसरा प्रकार, रक्त और दूसरे शारीरिक तरल पदार्थों के माध्यम से फ़ैलता है और बहुत अधिक गंभीर हो सकता है, क्योंकि यह जीर्ण स्थिति का कारण बन सकता है, अंततः ये भी सिरोसिस और यकृत कैंसर के विकास का कारण बनता है, हेपेटाइटिस का यह रूप कुख्यात है, क्योंकि गंभीर जटिलताओं के उत्पन्न होने से पहले स्वस्थ व्यक्ति कई वर्षों तक चुपचाप बिना किसी लक्षण के संक्रमित रह सकता है। रक्त–जनित हेपेटाइटिस उच्च मृत्यु दर के साथ जुड़ा हुआ है, और प्रति वर्ष दुनिया भर में दस लाख से अधिक मौतों का कारण बनता है, इस प्रकार यह एचआईवी–संक्रमण और तपेदिक के के बाद वैश्विक स्वास्थ्य चिंता का सबसे महत्वपूर्ण विषय है।

वायरल हेपेटाइटिस का रोगाणु लम्बे समय तक अज्ञात था

संक्रामक रोगों के खिलाफ सफल हस्तक्षेप की कुंजी रोगाणु की पहचान करना है। 1960 के दशक में, बारूक ब्लमबर्ग ने यह पता लगाया कि रक्त–जनित हेपेटाइटिस का खतरनाक प्रारूप एक वायरस के कारण था, जिसे हेपेटाइटिस–बी वायरस के रूप में जाना जाता है, और इस खोज ने क्लिनिकल परीक्षणों के लिए एक प्रभावी टीका बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। ब्लमबर्ग को इस खोज के लिए 1976 में फिजियोलॉजी या मेडिसिन में नोबेल पुरस्कार दिया गया था। उस समय, यू एस नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ में हार्वे जे.ऑल्टर उन रोगियों में हेपेटाइटिस की घटना का अध्ययन कर रहे थे, जिन्हें कभी रक्त–आधान मिला था। यद्यपि इस नयी खोज किए गए हेपेटाइटिस–बी वायरस के लिए रक्त परीक्षण ने संक्रमण से संबंधित हेपेटाइटिस के मामलों की संख्या को कम कर दिया, अल्टर और सहकर्मियों ने चिंता व्यक्त की कि अभी भी बड़ी संख्या में हेपेटाइटिस के मामले प्रकाश में आ रहे थे और उनमे हेपेटाइटिस–बी का संक्रमण नहीं पाया गया था। हेपेटाइटिस–ए के संक्रमण के लिए जांच भी इसी समय के आसपास विकसित हुई थी, और अधिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो गया कि हेपेटाइटिस–ए इन अस्पष्टीकृत मामलों का कारण नहीं था।यह चिंता का एक बड़ा स्रोत था कि रक्त संक्रमण प्राप्त करने वालों की एक महत्वपूर्ण संख्या ने अज्ञात संक्रामक रोगाणु के कारण जीर्ण–हेपेटाइटिस विकसित किया था। ऑल्टर और उनके सहयोगियों ने दिखाया कि इन हेपेटाइटिस के रोगियों में रक्त मनुष्यों के अलावा एकमात्र अतिसंवेदनशील चिम्पांज़ी बंदरों में भी रोग का संचरण कर सकता था। बाद के अध्ययनों से यह भी पता चला कि, अज्ञात संक्रामक रोगाणु एक नया वायरस की था । इस तरह से ऑल्टर और उनके शोध समूह ने पुराने वायरल हेपेटाइटिस के एक नए, विशिष्ट संस्करण को परिभाषित किया गया था। उस समय इस रहस्यमय बीमारी को ऐसे हेपटाइटिस जो न हेपटाइटिस–ए की तरह था और न ही हेपटाइटिस–बी की तरह ।

हेपेटाइटिस–सी वायरस की पहचान

इस नए वायरस की पहचान अब एक उच्च प्राथमिकता थी। वायरस पर शोध करने की सभी पारंपरिक तकनीकों का उपयोग किया गया था, लेकिन इसके बावजूद, वायरस ने एक दशक से अधिक समय लगाकर भी उसकी पहचान नहीं की जा सकी थी। फार्मास्यूटिकल कंपनी चिरोन के लिए काम कर रहे माइकल

असिस्टेंट प्रोफेसर, बायोटेक्नोलॉजी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, (केंद्रीय विश्वविद्यालय), लखनऊ,
ई–मेल : yusuf@daad-alumni.de

ह्यूटन ने वायरस के आनुवंशिक अनुक्रम (जीनोम सीक्वेंस) को अलग करने के लिए आवश्यक कठिन कार्य किया। ह्यूटन और उनके सहकर्मियों ने संक्रमित चिम्पांज़ी के रक्त में पाए जाने वाले न्यूक्लिक एसिड से प्राप्त डीएनए के टुकड़ों का एक संग्रह बनाया। इनमें से अधिकांश टुकड़े चिम्पांज़ी के जीनोम से ही आए थे, लेकिन शोधकर्ताओं ने भविष्यवाणी की थी, कि कुछ अज्ञात टुकड़े ज़रूर वायरस से प्राप्त हुए होंगे। उन्होंने अनुमान लगाया, कि वायरस के खिलाफ एंटीबॉडी हेपेटाइटिस के रोगियों से लिए गए रक्त में मौजूद होगी, जाँचकर्ताओं ने क्लोन किए गए वायरल डीएनए अंशों की वायरल प्रोटीन की पहचान करने के लिए रोगी के रक्त से प्राप्त सीरम का उपयोग किया। व्यापक कोशिशों के बाद, एक सकारात्मक क्लोन पाया गया। आगे के काम से पता चला कि यह क्लोन फ्लेविवायरस परिवार से संबंधित एक नए आरएनए वायरस से लिया गया था, और इसे हेपेटाइटिस–सी वायरस का नाम दिया गया था। अन्ततः क्रोनिक हेपेटाइटिस रोगियों में एंटीबॉडी की उपस्थिति ने इस लापता रोगाणु की पहचान करवाई ।

इस शानदार खोज का सारांश

हार्वे जे.ऑल्टर शोध समूह द्वारा रक्ताधान–संबंधी हेपेटाइटिस के पद्धतिगत अध्ययनों से पता चला कि, एक अज्ञात वायरस क्रोनिक हैपेटाइटिस का कारण था। माइकल ह्यूटन ने हेपेटाइटिस–सी वायरस नाम के नए वायरस के जीनोम को अलग करने के लिए एक बिलकुल नई रणनीति का इस्तेमाल किया। चार्ल्स एम. राइस ने अंतिम साक्ष्य प्रदान करते हुए कहा, कि हेपेटाइटिस–सी वायरस अकेले ही हेपेटाइटिस का कारण बन सकता है।

हेपेटाइटिस–सी वायरस की खोज निर्णायक थी; लेकिन पहेली का एक आवश्यक टुकड़ा अभी ज्ञात नहीं थाः क्या वायरस अकेले हेपेटाइटिस का कारण बन सकता है? । चार्ल्स एम. राइस, सेंट लुइस में वाशिंगटन विश्वविद्यालय के एक शोधकर्ता थे, उनका शोध समूह आरएनए वायरस के साथ काम करने वाले अन्य समूहों के साथ, हेपेटाइटिस–सी वायरस जीनोम के अंत में पाए जाने वाले एक पहले से अविकसित क्षेत्र का उल्लेख किया, कि उन्हें संदेह है कि वायरस की प्रतिकृति बनाने के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है। राइस ने अलग–थलग वायरस के नमूनों में आनुवांशिक बदलाव भी देखे और परिकल्पित किया, कि उनमें से कुछ वायरस प्रतिकृति में बाधा डाल सकते हैं। आनुवांशिक इंजीनियरिंग के माध्यम से, राइस ने हेपेटाइटिस–सी वायरस का एक आरएनए वैरिएंट बनाया, जिसमें वायरल जीनोम का नव परिभाषित क्षेत्र शामिल था, और निष्क्रिय आनुवंशिक परिवर्तनों से मुक्त था। जब इस आरएनए को चिंपांजियों के जिगर में इंजेक्ट किया गया था, तो रक्त में वायरस का पता लगाया गया था और जीर्ण रोग वाले मनुष्यों में देखे जाने वाले रोग परिवर्तन देखे गए । यह अंतिम प्रमाण था कि हेपेटाइटिस–सी वायरस अकेले रक्ताधान–मध्यस्थता वाले हेपेटाइटिस के अस्पष्टीकृत मामलों का कारण बन सकता है।

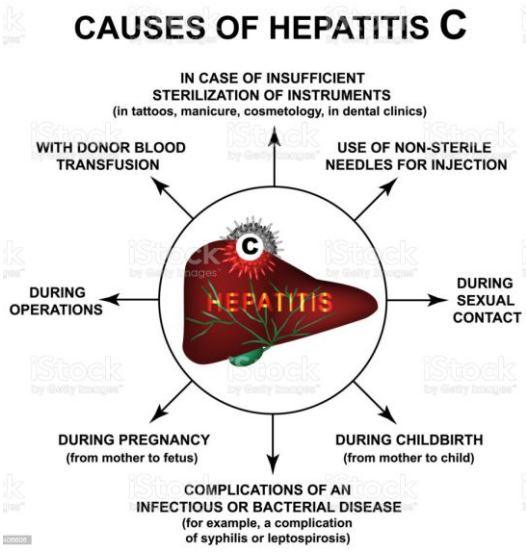

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित खोज का महत्व

हेपेटाइटिस–सी वायरस की नोबेल पुरस्कार विजेता की खोज वायरल बीमारियों के खिलाफ चल रही लड़ाई में एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। वायरस के लिए अत्यधिक संवेदनशील रक्त परीक्षण अब उपलब्ध हैं, और ये अनिवार्य रूप से दुनिया के कई हिस्सों में रक्ताधान से होने वाली हेपेटाइटिस को खत्म कर चुके हैं, इससे वैश्विक स्वास्थ्य में बहुत सुधार हुआ है। उनकी खोज ने हेपेटाइटिस–सी के लिए एंटीवायरल ड्रग्स के विकास की गति को कहीं तेज़ी प्रदान कर दी। इतिहास में पहली बार, अब बीमारी को ठीक किया जा सकता है, जिससे दुनिया की आबादी से हेपेटाइटिस–सी वायरस के उन्मूलन की उम्मीद बढ़ जाती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, रक्त परीक्षण की सुविधा प्रदान करने और दुनिया भर में एंटीवायरल ड्रग्स उपलब्ध कराने के अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों की आवश्यकता होगी । इन तीन नोबेल पुरस्कार विजेताओं द्वारा किये गए शोध के परिणामों के फलस्वरूप, जीर्ण–हेपेटाइटिस में वायरस संक्रमण का पता लगाने वाले संवेदनशील रक्त परीक्षण के विकास में मदद मिली है, जिसने दुनिया के एक बड़े हिस्से में संक्रमण द्वारा होने वाली हेपेटाइटिस के जोखिम को अब लगभग समाप्त ही कर दिया है। इस सफलता ने एंटीवायरल दवाओं के विकास को भी मुमकिन किया, जो बीमारी का इलाज कर सकती हैं। हेपेटाइटिस–सी एक प्रमुख वैश्विक स्वास्थ्य चिंता का विषय बना हुआ था, लेकिन रोग को खत्म करने के लिए अब अवसर मौजूद है।

खेती-बाड़ी

जलवायु परिवर्तन के दौर में जैविक खेती की प्रासंगिकता : विधि एवं लाभ

❑ डॉ0 शिव मंगल प्रसाद, श्री पंकज कुमार सिंह, श्रीमती निकिता कुमारी एवं डॉ0 रंजय कुमार सिंह

अपने देश भारत में विगत के दशकों में रासायनिक खादों के उपयोग से फसल उत्पादन में बहुत ज्यादा बढोत्तरी हुई है ,हम खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भर तो हुए हैं पर इस सफलता में पर्यावर्णीय क्षति के लक्षण दिखाई देने लगे हैं . ऐसा लगने लगा है कि रासायनिक खेती सदा निभने वाली खेती या टिकाऊ खेती नहीं है. रसायनों पर निर्भरता को कम करते हुए तथा जैविक खेती का समायोजन करते हुए समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन कर हम रसायनों के दुष्प्रभाव को कम कर सकते हैं एवं वांछित उत्पादन तथा उतरोत्तर वृद्धि दर हासिल कर सकते हैं . समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत फार्म यार्ड मैन्योर (एफ वाई एम्),हरी खाद,संवर्धित खाद एवं केंचुआ खाद इत्यादि का विशेष महत्त्व है जिनकी चर्चा हम आगे करेंगें .

फार्म यार्ड मैन्योर (एफ वाई एम)– फार्म यार्ड मैन्योर का निर्माण मवेशी(गाय/भैंस)के गोबर, मूत्र,घास–पात इत्यादि को मिला कर तैयार किया जाता है.इसमें सारे पोषक तत्व कम–कम मात्रा में पाए जाते हैं पर यह मिटटी की उर्वरता एवं स्वास्थ्य को बढ़ाने में सस्ता एवं पर्यावरण के लिए अच्छा खाद है.इसे तैयार करने के लिए हौज निर्माण करने की जरूरत होगी जिसके उपर छज्जा ,छत देने जरुरत होती है जो धूप की तेज किरणों एवं वर्षा की तेज बौछारों से खाद को बचाये. गोबर,मूत्र अन्य जैव पदार्थों को मिलाकर प्रत्येक दिन उस हौज में स्तरों में डालते जाते हैं. हौज के भर जाने के 6 महीनों के बाद फार्म यार्ड मैन्योर बन कर तैयार हो जाता है. फसलों के आधार पर इन्हें 250 से 300 क्विंटल प्रति हेक्टर की दर से देने की अनुशंसा की जाती है. फार्म यार्ड मैन्योर के अलावा

कम्पोस्ट बनाने की विधियों में नाडेप विधि भी बहुत ही अच्छी विधि है यह महाराष्ट्र राज्य के यवतमाल जिले के कृषक श्री नारायण देव पंडरी पांडे (नाडेप काका) द्वारा विकसित की गयी है. इसमें 120 दिनों में खाद बन कर तैयार हो जाता है. इसमें कम्पोस्ट बनाने वाले हौज जिसका आकार 12X5X3 जि एवं दीवारें जालीदार होती है. इसमें तीन परतों में विभिन्न तरह के जैव पदार्थ भरे जाते हैं.हौज भरने से पहले 15 लीटर पानी में 10–12 किलो गोबर घोल कर अन्दर की दीवारों और नीचे फर्श पर छिडकाव करें फिर पहली परत में पत्तों,फसल अवशेष इत्यादि को मिलाकर 15 से.मी.(लगभग 100 – 110 किलो ग्राम)का स्तर दें.इसके बाद गोबर के घोल का (5 किलो गोबर + 125 लीटर पानी) स्तर दें. इस गीले परत के उपर सुखी चाली हुई मिटटी (कंकड़,प्लास्टिक इत्यादि से मुक्त)50 से 60 किलोग्राम बिछा दें।

इसी क्रम को दोहराते हुए हौद को मुंह के उपर तक डेढ़ फीट झोपडी नुमा भरें . इसमे यद् राहे कि सबसे उपर वाला स्तर मिटटी का हो और उसे गोबर के घोल से लिप कर बंद कर छोड़ दें. लगभग एक महीनों बाद पत्तों,फसल अवशेषों इत्यादि के अपघटन के बाद वह दब जाता है उसके उपर से पूरा दबाकर फिर से भर एवं लिप कर 3.5 से 4 महीनों के लिए छोड़ दें.इस अवधि के बाद एक हौज से लगभग तीन टन उत्तम क्वालिटी का नाडेप खाद प्राप्त होगा।

हरी खाद – हरे पत्तों को मिटटी में दबाने तथा मिटटी की दशा को सुधारने की क्रिया को हरी खाद देना कहा जाता है यह दो प्रकार से किया जाता है . कहीं से वांछित हरी पत्तियां लाकर मिटटी में मिलाना एवं जिस खेत में हरी खाद देना हो उसी में उगाकर मिटटी पलटने वाले हल से दबा देना. हरी खाद की दूसरी विधि ज्यादा प्रचलित है. हरी खाद की फसलों में ढैंचा, सनई, ग्वार, मूंग, लोबिया, बरसीम, उरद, सेंजी, रिजका इत्यादि हैं.धान की फसल से पहले मई के महीने में होने वाली वरिश का फायदा उठाते हुए खेत की जुताई करके

1–3 केन्द्रीय वर्षाश्रित उपराउं भूमि चावल अनुसंधान केंद्र, हजारीबाग 4 कृषि विज्ञान केंद्र, चतरा, झारखण्ड
Email:smp_crri@yahoo.in

प्रति हेक्टेयर की दर से हरी खाद के बीज (25–30 किलो) को खेत में समान रूप से विखेर दिया जाता है साथ में थोड़ी डी ए पी(40–50 किलो) एवं पोटाश(25 –30 किलो) को भी. फिर वो फसलें जब 40–45 दिनों की हो जाये तब मिटटी पलटने वाले हल से खेत में ही जोत कर दबा दी जाती है जो मौनसून की शुरुआत होने पर गल जाती है एवं बहुत बड़े मात्रा में पोषक तत्व एवं जैव पदार्थ उपलब्ध करते हैं. ढैंचा, सनई ,ग्वार ,मूंग ,लोबिया,बरसीम,उरद,सेंजी,रिजका इत्यादि सभी सिम्ब वाली (फलीदार)फसलें हैं जो जल्द बढ़वार करती है और भूमि में नत्रजन भी स्थिर करती है।

हरी खाद के लाभ :–

1. मृदा की संरचना में सुधार होने के कारण फसलों की जड़ों का फैलाव अधिक होता है।
2. हरी खाद से मृदा उर्वरकता के ह्रास की भरपाई हो जाती है।
3. मृदा जनित रोगों में कुछ कमी आती है।
4. खरपतवारों को रोकने में सहायक है।
5. रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग में कमी ला सकते है और टिकाऊ खेती का आरम्भ कर सकते हैं।
6. हरी खाद से भूमि में नत्रजन स्थरीकरण होता है जो परवर्ती फसल को लाभ पहुंचाता है।

वर्मी कम्पोस्ट या केंचुआ खाद– केंचुए की कुछ विशेष प्रजातियों (आईसीनिया फोयटीडा एवं यूड्रीलस युजिनी) का उपयोग करके गोबर एवं अन्य जैविक पदार्थों को केंचुआ खाद में बदला जाता है. ये गोबर एवं अन्य जैविक पदार्थों को खाकर बहुत ही उत्तम क्वालिटी का खाद बना देता है.केंचुओं की संख्या के आधार पर इसे बनने में ढाई से तीन महीने लग जाते हैं. इसमें साधारण कम्पोस्ट की तुलना में पोषक तत्वों की ज्यादा मात्रा तो होती हो है साथ ही विटामिन, एंजाइम, हारमोन इत्यादि भी मौजूद रहते हैं जो फसल को बहुत लाभ पहुंचाते हैं। वर्मी कम्पोस्ट बनाकर अनेक प्रकार के लाभ लिए जा सकते हैं.यह स्वरोजगार का भी एक साधन है इसलिए युवाओं को भी यह आकर्षित कर रहा है। युवक या किसान

केचुआ,वर्मी कम्पोस्ट तथा वर्मी वाश इत्यादि बेच सकते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि–

- किसी ऊँचे एवं छायादार जगह का चुनाव करें जहाँ बरसात में पानी न लगता हो तथा छाँव बनी राहे.
- बेड या हौज की लम्बाई 10 फीट, चौडाई 4 फीट और ऊँचाई 3 फीट रखते हुए पांच इंच की दीवार सीमेंट, ईंट, बालू की सहायता से बनायें,बेड के तल को दो इंच का ढाल रखते हुए समतल करने की जरुरत है. बेड के नीचे वाले साइड में एक छोटा सा छेद छोड़े जिससे कि अतिरिक्त पानी निकलता रहे। वहां प्लास्टिक का पतला पाईप भी डाल सकते हैं।
- बेड को पूरी अच्छी तरह से पलस्तर नहीं करना है, अन्दर की तरफ से सीमेंट और बालू का कड़ा मिश्रण बनाकर जुडाई वाले जगहों को समतल कर देना है।
- बेड की भराई करने से पूर्व अन्दर की दीवारों पर गोबर का घोल छिडकाव करें.भराई करने वाले पदार्थों (गोबर, घास फूस, खर पतवार, सब्जी बाजार के कचड़े,रशोई घर के कचड़े इत्यादि) को एक जगह एकत्रित करके 25–30 दिनों के लिए छोड़ें और कभी–कभी उसे मिलाते रहें जिससे वह डीकम्पोज होने की प्रक्रिया में आ जाये तब वर्मी कम्पोस्ट वाले बेड में डालें.बेड को थोड़ा(5–6 इंच)खाली छोड़ना है।
- फिर आईसीनिया फोईटीडा/यूड्रीलस यूजिनी नामक केचुआ को 5 किलो(उपरोक्त बताये गए आकार के बेड)छोड़ें। वर्मी कम्पोस्ट बेड के उपर छावनी की जरुरत वर्षादृधूप से वचाव हेतु होगी.यह छप्पर किसी भी प्रकार का हो सकता है जो पानी और धूप से बचाव कर सके।
- केंचुआ छोड़ने के बाद झरने/हजारे से पानी का छिडकाव करें फिर टाट या जूट वाली बोरी या पुआल से ढँक दें।
- दो–तीन दिनों के अन्तराल पर इसे उलट–पुलट करना है,पानी का छिडकाव करना है एवं फिर ढँक देना है।

- 70 –75 दिनों बाद पानी देना बंद कर बेड को खुला छोड़ दें और बीच–बीच में पलटाई करते रहें ताकि खाद सूखने लगे.80–85 दिनों बाद खाद को 2 मि.मी.वाली जाली से छानना पड़ता है।
- क्या नहीं दें – प्लास्टिक, लोहा, कांच, पत्थर, काँटा, साबुन का पानी,अंडा का छिलका इत्यादि जो अपघटित ना हो और आपके हांथों को नुकसान पहुंचाए, वैसे वस्तु न डालें।
- तैयार वर्मी कम्पोस्ट में किसी भी प्रकार का अवांछित गंध नहीं होता है,यह चाय की पत्ती जैसा दिखने में होता है और हल्का होता है।
- प्रयुक्त होने वाले कुछ मुख्य सामान– टोकरी, कुदाल, बेलचा, चलनी, हजारा, बाल्टी, मग, पंजा, जूट की बोरी, टाट इत्यादि।

वर्मी कंपोस्ट के लाभः–

1. भूमि के भौतिक तथा जैविक गुणों में सुधार होता है स
2. मृदा संरचना तथा वायु संचार में सुधार होता है।
3. नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
4. कूड़े–कचरे से होने वाले प्रदूषण पर नियंत्रण किया जा सकता है
5. वर्मी कम्पोस्ट एक लघु कुटीर उधोग के रूप में स्वरोजगार के नए अवसर प्रदान करता है।
6. फलों एवं सब्जियों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
7. यह रासायनिक उर्वरक की खपत कम करके मृदा स्वास्थ्य को बढाता है।
8. मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है क्योंकि उनको रसायन मुक्त सब्जियां मिलती है।
9. जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा सकता है।

बाल-कविता

मैं

कुमारी अनिका मिश्रा

कितनी सुन्दर, कितनी कोमल, प्यारी प्यारी लगती हूँ,

मैं हूँ भोली, कन्ठ कोकिला, दिन भर गाती रहती हूँ।

गोले, गोले मामा बोले, अक्कू, लक्कू नाम मेरा,

थकती नहीं खेल कर दिन भर, धमाचौकड़ी काम मेरा।

पकड़ा–पकड़ी खेलूँ मैं, नाचूँ मैं ता ता ता थैय्या,

करुँ शरारत, मेरे बदले, मार खाय मेरा भैय्या।

जब आती है मेरी सहेली, मुझे न पुस्तक भाती है,

आँख लगे तो उसकी आहट नींद उड़ा ले जाती है।

गरम पकोड़े, कोक, कचौड़ी, केक, समोसा खाऊँगी,

देख दाल, तरकारी, रोटी नखरे लाख दिखाऊँगी।

मुझको तो हर विद्या प्यारी, चित्र कला, विज्ञान, खगोल,

गणित, चिकित्सा, नर्तन भाये, अच्छा लगता है भूगोल।

संस्कृत पढ़ कर सीखा मैंने, विनय, वन्दना बहुत महान,

इस भाषा में भरा हुआ है जीवन का सारा विज्ञान।

कविता का अब मूड नहीं है, मेरी सहेली आई है,

बाय–बाय माँ !!! लगता है वह नया खिलौना लाई है।

134 / 4C, Kalpataru Riverside, Takka, Panvel, Navi Mumbai – 410 206.
Email : bpd53@yahoo.co.in

वर्मी कम्पोस्टः केंचुए का कृषि में महत्त्वपूर्ण योगदान

❑ डॉ0 बरखा वैश्य, श्री वैभव श्रीवास्तव, डॉ0 राजीव प्रताप सिंह

क. भूमिका

आज की सघन खेती के युग में भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने के लिए प्राकृतिक खादों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद मुख्य है। कम्पोस्ट बनाने के लिए फसल के अवशेष, पशुशाला का कूड़ादृकरकट व गोबर को गड्ढे में सड़ाया जाता है। इस प्रक्रिया में ज्यादा समय लगता है तथा पोषक तत्वों का भी नुकसान होता है। साधारण कम्पोस्टिंग प्रक्रिया में ज्यादा समय लगने के साथ–साथ पर्यावरण भी दूषित होता है। पिछले कुछ सालों से कम्पोस्ट बनाने की एक नई विधि विकसित की गई है जिसमें केंचुआ का प्रयोग किया जाता है। इसे "केंचुआ खाद या वर्मी कम्पोस्ट" कहते है। केंचुआ खाद प्लास्टिक, शीशा, पत्थर के अलावा किसी भी स्वतः सड़नशील चीज जैसे कूड़ा–करकट, फसल–अवशेष, गोबर, जूट के सड़े हुए बोरे आदि से बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है।

केंचुआ बहुत अधिक मात्रा में खाना खाने वाले होते हैं, वे स्वतः सड़नशील (बायोडिग्रेडबल) पदार्थ का भक्षण करते हैं और उसका कुछ भाग अपशिष्ट पदार्थ या वर्मिकास्टिंग्स के रूप में बाहर छोड़ते हैं। पोषक तत्वों से युक्त वर्मी–कास्टिंग पौधों के लिए एक लाभकारी खाद है। यह कृमि खाद, पोषक तत्वों की आपूर्ति एवं पौधों में हार्मोन्स को बढ़ाने के अलावा, मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार लाते है जिससे मिट्टी द्वारा पानी और पोषक तत्व धारण करने की क्षमता में वृद्धि होती है। इसकी लागत प्रति कि.ग्रा. 2.0 रु. से भी कम होने के कारण, इसे 6.0 से 8.0 रु. प्रति कि.ग्रा. तक बेचने से भी काफी लाभप्रद है।

ख. प्रक्रिया

वर्तमान में कृषि कचरे, गाय के गोबर तथा फसलों के अवशेष इत्यादि के साथ कॅचुओं का उपयोग कर खाद बनाने की प्रक्रिया धीरे धीरे प्रचलित होती जा रही है। केचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया को उथले गड्ढों, ईंटो से बनी क्यारी एवं वर्मीकम्पोस्टिंग बैग में किया जा सकता है ताकि केंचुओं को इस प्रक्रिया के दौरान बनने वाली ऊष्मा से बचाया जा सके अन्यथा वे मर सकते हैं। केचुए क आवागम न (मूवमेंट) को सुनिश्चित करने के लिए उसकी निचली एवं पार्श्व दीवारों को एक प्लस्टिक के आवरण से ढक देते है। तत्पश्चात, कृषि कचरे, गाय के गोबर, फसल अवशेष को उसमे डालकर केचुए को छोड़ दिया जाता है. साधारणतः 20–25 दिन पुराने गोबर को इस प्रक्रिया के लिए उपर्युक्त मन जाता है अन्यथा नए अपरिपक्व गोबर द्वारा उत्पन्न ऊष्मा से केचुए मर सकते है। उनके द्वारा अपशिष्ट पदार्थ को तीव्रता से बाहर छोड़ने के लिए सामान्य तापक्रम लगभग 25–30 डिग्री सेंटीग्रेड के आसपास रखा जाता है। अंततः इस प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न उत्पाद को वर्मी–कम्पोस्ट कहा जाता है जो केंचुओं द्वारा खाये गए जैविक पदार्थों के अपशिष्ट से बनता है। इसी प्रकार केचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया को चारों तरफ से खुले एक शेड के अंदर ईंटों से बने 0.9 से 1.5 मीटर तक चौड़ा तथा 0.25 से 0.3 तक ऊंची क्यारियों में भी किया जा सकता है ।

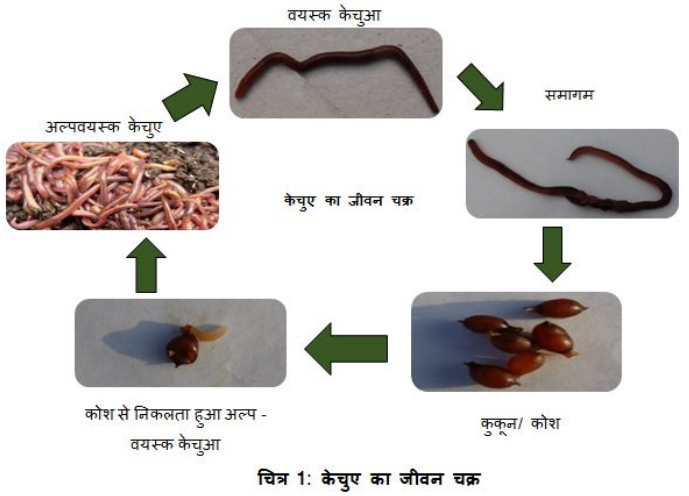

चित्र 1: केचुए का जीवन चक्र

वाणिज्यिक उत्पादन के लिए वर्मीकम्पोस्टिंग की प्रक्रिया को वर्मीकम्पोस्टिंग बैग अथवा ईंट से बनी हौद (बेड) में भी किया जा सकता है। सामान्यतः वर्मीकम्पोस्टिंग बैग 12 फ़ीट लम्बा, 4 फ़ीट चौड़ा और 2 फ़ीट ऊंचा होता है जबकि ईंट से बनी हौद 15 मीटर तक लंबा, 1.5 मीटर तक चौड़ा तथा 0.6 मीटर तक ऊंची बनाई जा सकती है। हौद की लंबाई सुविधानुसार बनायी जा सकती है, परंतु उसकी चौड़ाई तथा ऊंचाई नहीं बढ़ाई जा सकती है क्योंकि चौड़ाई अधिक रखने से संचालन सुविधा प्रभावित होती है तथा ऊंचाई अधिक रखने से गर्मी के कारण तापक्रम बढ़ सकता है।

वर्मीकम्पोस्टिंग बैग एवं हौद में गोबर तथा कृषि कचरे को इस तरह लगया जाता है जिससे की 0.6 – 0.9 मीटर का ढेर

पर्यावरण एवं धारणीय विकास संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–05
rajeevprataps@gmail.com

लग जाए। परतों के बीच प्रति घनमीटर क्यारी आयतन में 350 केंचुओं को रखा जा सकता है जिसका वजन लगभग 1 किलोग्राम होता है। क्यारी पर पानी का छिड़काव कर 60–70 तक नमी और 20–30 डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम रखा जाता है। वर्मीकम्पोस्टिंग इकाई पुराने जूट के बोर से ढक देते है ताकि उसे बाहरी उष्मा से बचाया जा सके एवं तापमान को नियंत्रित किया जा सके। जब उत्पादन का लक्ष्य व्यावसायिक पैमाने पर हो तो आरंभ में उत्पादन लागत के अतिरिक्त पूंजीगत वस्तुओं में निवेश की ज्यादा जरूरत होती है। प्रति टन उत्पादन क्षमता के लिए पूंजीगत लागत लगभग 5000/– से 6000/– तक आती है।

ग. खाद रखने का तरीका

इस खाद को छाया में सुखाकर इसकी नमी कम करी जाती है। इससे यह रखने योग्य हो जाता है। सूखने के पश्चात खाद को बोरे में एक साल की अवधि तक के लिए रखा जा सकता है। केंचुआ खाद का इस्तेमाल करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि खेत में किसी तरह की रासायनिक खाद तथा किसी प्रकार की दवा का इस्तेमाल न हो।

घ. केंचुआ खाद की प्रयोग दृ विधि

1. खेत में अंतिम जुताई के समय 20 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर में केंचुआ खाद डालकर जुताई करें।
2. बीज बोने से पहले पंक्ति में इसे अच्छी तरह मिट्टी में मिला दें अथवा पौधा लगाने से पूर्व इसको अच्छी तरह डाल दें।
3. मिट्टी चढ़ाने के समय भी इसे डाला जा सकता है।
4. गुड़ाई के समय केंचुआ खाद पौधों की जड़ों में डालकर मिट्टी से ढंक दें अथवा पौधों की रोपाई एवं बीजों की बुआई के समय केंचुआ खाद डालकर बुआई रोपाई करें।

ङ. सुझाव

1. अच्छे परिणाम के लिए पुवाल, सूखी पत्ती, फसलों के अवशेष आदि का उपयोग केंचुआ खाद बनाने के लिए करना चाहिये।
2. पानी छोड़ने वाली चीज़ें (टमाटर, लौकी इत्यादि) और प्याज के छिलके, रसोई की झूठन आदि का उपयोग वर्जित है।
3. वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए छायेदार जगह का प्रयोग करना चाहिए।
4. नए गोबर का प्रयोग वर्जित है।

चित्र 2: वर्मी-कम्पोस्ट बैग

च. केंचुआ खाद प्रयोग करने से लाभ

1. केंचुआ खाद को भूमि में बिखेरने से तथा भूमि में इनकी सक्रियता से भूमि भुरभुरी एवं उपजाऊ बनती है जिससे पौधों की जड़ों के लिए उचित वातावरण बनता है। इससे उनका अच्छा विकास होता है।
2. केंचुआ खाद मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि करता है तथा भूमि में जैविक क्रियाओं को निरंतरता प्रदान करता है।
3. केंचुआ खाद में आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर एवं संतुलित मात्र में होते हैं, जिससे पौधे संतुलित मात्रप में विभिन्न आवश्यक तत्व प्राप्त कर सकते हैं।
4. केंचुआ खाद के प्रयोग से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है, जिससे उसमें पोषक तत्व एवं जल संरक्षण की क्षमता बढ़ जाती है व हवा का आगमन भी मिट्टी में ठीक रहता है।
5. केंचुआ खाद चूँकि बायोडिग्रेडेबल कूड़ा–करकट, गोबर व फसल अवशेषों से तैयार की जाती है अतः गंदगी में कमी करती है और पर्यावरण को सुरक्षित रखती है।
6. केंचुआ खाद टिकाऊ (सतत) खेती के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है।

छ. वर्मी–कम्पोस्ट से आर्थिक लाभ

केंचुओं द्वारा कचड़े का कम्पोस्ट में परिवर्तित होने के साथ–साथ केंचुओं की संख्या पहले से कम से कई गुना बढ़ जाती है। इस प्रक्रिया को लगातार करने से पूरे वर्ष कम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है। औद्योगिक स्तर पर इसे तैयार करने से एक चक्र में उत्पादक को लगभग 10,000 रुपये का लाभ होता है।

चित्र 3: वर्मी-कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया एवं उसके लाभ

खेती-बाड़ी

''प्लास्टिक ट्रे'' शंकर सब्जियों की उत्तम पौध तैयार करने की एक नवीनतम विधि

❑ श्री [1]सूर्य प्रताप सिंह, श्रीमती वर्षा रानी एवं प्रो0 आर.एस. सेंगर[1]

''जो जैसा बोएगा वैसा ही काटेगा'' इसीलिए जो पौध अपनी शुरूआत से ही स्वस्थ होगी, वहीं विकसित होकर अधिक एवं उत्तम उपज प्रदान करती है। वैसे भी कहा गया है कि उत्तम फसल किसान के अच्छे जीवन या खुशहाल जीवन एवं राष्ट्र की आर्थिक उन्नति का आधार है। वर्तमान में प्रगतिशील किसान सब्जियों की पौध का उत्पादन एक विशेष विधि से करने लगे हैं। हमारे देश में आमतौर पर किसान अपने खुले खेत में ही पौधे उगाते रहे हैं, लेकिन खुले में पौध उगाने की कमियों/हानियों से अब हम सब लोग अच्छे प्रकार से परिचित है। इनके अन्तर्गत जैसे बीजों का अंकुरण कम होना, धूप, वर्षा और के कारण बहुत से पौधों का खराब होना, पौधों की आपसी प्रतिस्पर्धा से होने वाला असंतुलित विकास, रोपाई के समय पौधों की जड़ों में जख्म होना आदि। किसानों के द्वारा खुले में पौधे उगाने से लगभग 30 प्रतिशत पौधे नष्ट हो जाते हैं और रोपाई के बाद भी लगभग 10 प्रतिशत पौधे नष्ट हो जाते हैं। ट्रे में उगाए गए पौधों का रोपण अच्छा होने से अधिक फसल मिलती है। पौधे तैयार करने की एक नवीनतम विधि ''प्रो ट्रे, प्लस ट्रे या फ्लेट ट्रे'' आदि को विकसित किया गया है। जिससे कम समय में अच्छी गुणवत्ता वाली पौध तैयार की जा सकती हैं। क्योंकि इस विधि से पार्श्व जड़ों का विकास अधिक होता है इससे पौध जल्दी

पॉलीथीन थैली एवं प्लास्टिक ट्रे का तुलनात्मक विवरण

क्र.सं.	पॉलीथीन थैली	प्लास्टिक ट्रे
1.	पॉलीथीन थैली भरने के लिए पॉस्टिंग मिश्रण (मिट्टी, रेत एवं खाद) की आवश्यकता अधिक मात्रा में होती है।	प्लास्टिक ट्रे मुख्य जड़ के विकास को अवरूद्व कर पार्श्व जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करती हैं जिससे पौधों को खेत में शीघ्र ही स्थापित होने में सहायात प्राप्त होती है।
2.	पॉलीथीन थैली से पौधों की जड़ें निकलकर अन्दर की ओर जमीन में चली जाती है, जिससे पार्श्व जड़ों का विकास कम होता है। इसके अतिरिक्त मुख्य जड़ें ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। जिससे रोपण के बाद खेत में स्थापित होने में अधिक समय लगता हैं और पाघों की मृत्युदर भी अधिक ही रहती है।	पौधों में मूल वलयन की शिकायत नही होती हैं
3.	पॉलीथीन थैली का आकार बहुत बड़ा होता है, जिसके चलते नर्सरी में अधिक स्थान की आवश्यकता होती है।	नर्सरी में कम स्थान उपलब्ध होने पर भी अच्छे पौधे तैयार किए जा सकते हैं।
4.	पॉलीथीन थैली में लगे पौधों के स्थानान्तरण में परिवहन व्यय अधिक होता है और पौधों को क्षति भी अधिक होती है।	इस विधि से पौध तैयार करने में व्यय कम आता है, क्योंकि इसमें पॉट मिश्रण कम लगने के साथ ही यह परिवहन में भी सुविधाजनक रहता हैं साथ ही परिवहन के दौरान पौधों को होने वाली क्षति से बचाया जा सकता हैं।
5.	पॉलीथीन थैली का उपयोग करने के बाद उसका उपयोग फिर से नही किया जा सकता और प्रतिवर्ष नई पॉलीथीन थैली खरीदनी पड़ती हैं जिससे व्यय बढ़ता हैं । इसके अतिरिक्त पौधों को रोपित करने के बाद इन थैलियों को रोपित स्थल पर आस–पास ही फेंक दिया जाता है और ये नष्ट भी नही होती है जिससे पर्यावरण को हानि पहुँचती है।	प्लास्टिक ट्रे में एक बार पौधा तैयार करने के बाद उसका पुनः उपयोग किया जा सकता है। अतः इसको बार–बार खरीदने की आवश्यकता नही पड़ती है।

जे0 एस0 विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, उत्तर प्रदेश। [1]सरदार बल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौ0 विश्वविद्यालय, मेरठ
ई–मेल : sengarbiotech7@gmail.com

ही खेत में स्थापित हो जाती है।

प्रो ट्रे, प्लग ट्रे अथवा फ्लैट ट्रे क्या है?:– प्लग ट्रे प्लास्टिक का बना होता है जिसमें अनेक रूट ट्रेनी बने होते हैं। प्रो ट्रे के दोनों से शंकु आकार के एवं खुले हुए होते हैं और इसके भीतर की और ऊपर से नीचे तक 6 लंबवत उभर होते हैं जो पौधे

के पार्श्व जड़ों को नीचे की ओर जाने मैं सहायता करते है। एक प्रोट्रे में पौधे की संख्या सुविधा अनुसार 30 से 50 तक होती है एक प्रोट्रे की लंबाई 26.5 सेमी, चौड़ाई 23.5 सेमी एवं प्रत्येक प्रोट्रे का आयतन 150 सी.सी. होता है। एक प्रोट्रे 10 से.मी. लम्बा होता है जिसका ऊपरी सिरा 5 से.मी. एवं निचला सिरा 2 से.मी. व्यास का होता है। अनेक प्रोट्रे को एक लोहे के स्टैंड में भूमी से अलग 50 से.मी. की ऊंचाई पर रखते हैं। जिससे इसका निचला सिरा हवा के संपर्क में रहे। जब पौधे की मुख्य जड़ हवा के संपर्क में आती है तो वे प्राकृतिक रूप से सूखने लगती है और पार्श्व जड़ों का अधिक विकास होता है जो पौधरोपण के बाद पौधे की शीघ्रता से स्थापित करने में सहायक होती है।

आजकल हमारे किसान प्लास्टिक ट्रे में पौध उगाना ज्यादा लाभदायक मानते हैं। इसमें पौधों की देखभाल बच्चों के लालन–पालन जैसा ही होता है। धूप, वर्षा, रोग एवं कीड़ों से पौधों को बचाने के लिए सुरक्षित आवरण की आवश्यकता होती है। टमाटर, शिमला मिर्च, पत्ता गोभी, फूल गोभी और बैंगन जैसी शंकर सब्जियों के पौधों को हरित गृह या जाली गृह में प्लास्टिक ट्रे में ही उगाते हैं। पौध उगाने के लिए बनाई गई इन विशेष ट्रे को उपयुक्त मिश्रण से भर लिया जाता हैं। अधिकतर किसान इसके लिए कोको पीट यानी नारियल के रेशे के चूर्ण का उपयोग करते हैं। लगभग 100 ट्रे भरने के लिए 100 किलोग्राम कोको पीट पर्याप्त रहता है। ट्रे में कोको पीट भरने के बाद उसके प्रत्येक खाने में लगभग 5 मि.ली. का एक गड्ढ़ा बनाया जाता है। प्रत्येक खाने में एक बीज को बोकर कोको पीट से ट्रे को फिर से भरते हैं। एक कृषि मजदूर 1 दिन में लगभग 200 प्लास्टिक ट्रे यानी 20,000 बीजों को बाने की क्षमता रखता है। बीज को बोने के बाद 8–10 ट्रे एक के ऊपर एक करके रखी जाती हैं और एक प्लास्टिक शीट से ढंक दिया जाता है ताकि अंदर का तापमान बढ़ जाए जिससे बीज अंकुरण जल्दी हो सके। बीजों की प्रकृति के अनुसार अंकुरण होने में 3 से 5 दिन लगते हैं। अंकुरण के बाद इन प्लास्टिक ट्रे को हरित गृहों हो या जाली

गृहों में लगाया जाता है। बिछाई गई प्लास्टिक शीट के ऊपर इन ट्रे को रखा जाता है। क्यारियों के ऊपर और प्लास्टिक शीट बिछाने से जड़ों को जमीन के अंदर जाने से रोका जा सकता है। इन प्लास्टिक ट्रे की सिंचाई भी की जाती है ताकि पर्याप्त नमी बनी रहे और आवश्यकतानुसार पोश्टिक तत्वों को तरल रूप में देना चाहिए इसके अलावा पौधों पर आवश्यक कीट एवं रोग नाशक दवाओं का छिड़काव भी किया जाता है। इस प्रकार बढ़ते पौधे अपनी प्रकृति के अनुसार 4–6 हफ्तों में रोपने के योग्य हो जाते हैं। टमाटर जैसी पौध 25 दिनों में तैयार हो जाती है। शिमला मिर्च की पौध के लिए 30–40 दिन लगते हैं। टमाटर, शिमला मिर्च, पत्ता गोभी, फूलगोभी एवं मिर्च इत्यादि की पौध उगाने के लिए 98 खाने वाली पोट्रे का प्रयोग किया जाता है।

पॉलीप्रोपलीन से बनी इन ट्रे को 4–6 बार उपयोग में लाया जा सकता है किंतु हर बार उपयोग में लाने से पहले इन्हें पानी से साफ करना तथा रोग मुक्त करना अति आवश्यक है। इन ट्रे के तलों के खानों में बने छेदों से अनावश्यक पानी का निकास होता है। खानों के आपसी बराबर अंतराल के कारण पौधों के पनपने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है। उगाने के लिए कोको पीट मिश्रण से जड़े सुदृढ़ बनती है और इससे नमी बनाए रखने की क्षमता भी अधिक होती है। यह खाद बाजार में 25 किलो के बैगों में उपलब्ध होती है।

खेती-बाड़ी

अन्नदाता की आये बढ़ाने में लाभकारी ड्रोन

❑ डॉ. आर.एस. सेंगर, कृशानु एवं वर्षा रानी

भारत में हरित क्रांति के माध्यम से खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त कर विगत वर्षों में महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है इस सफलता का पूरा श्रेय देश के किसानों और वैज्ञानिकों को जाता है क्योंकि वैज्ञानिकों ने जो आधुनिक तकनीकी की खोज की उन तकनीकों का समावेश अपने खेतों में किसानों के द्वारा किया गया और आज उसका परिणाम है कि हमारा देश अनाज उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया है देश के किसानों ने उन्नत किस्म के बीज मशीनों आदि का का प्रयोग करते हुए खेती में अपेक्षित बदलाव लाकर बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने तथा उत्पादन लक्ष्य को समय पर प्राप्त करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है इस उत्पादकता को और अधिक बढ़ाने श्रम को कम करने के लिए ड्रोन टेक्नोलॉजी में एक नई क्रांति ला सकती है।

समय व जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ खेती में जहां समस्याओं का आकार व स्वरूप बदला है वही किसानों पर लागत में कमी लाते हुए अधिक उत्पादन का दबाव भी लगातार बढ़ता जा रहा है साथ ही कृषि में आय को बढ़ाने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं जिससे किसानों की आय दुगनी हो सके किसानों की आय को दोगुनी करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक खेती के नए तौर–तरीके अपनाए जा रहे हैंद्य

इनमें अत्याधुनिक कृषि मशीनों तथा अन्य उपकरणों का विशेष तौर पर जिक्र किया जा सकता है क्रमिक विकास के फल स्वरुप अन्य मशीनों और यंत्रों की भांति ड्रोन भी विकास के इस मुकाम पर पहुंच चुका है जहां उसे खेती के प्रयोग में भी लाया जा सकता है और कृषि के क्षेत्र में ड्रोन की उपयोगिता को देखते हुए इसकी लगातार मांग बढ़ रही हैद्य इस बार बजट 2022–26 में ड्रोन के जरिए कृषि क्षेत्र को बढ़ावा दिया जाएगा इससे फसल मूल्यांकन भूमि अभिलेखों के डिजिटलीकरण कीटनाशकों व पोषक तत्वों के छिड़काव में मदद मिलेगी।

खाद्यान्न उत्पादन में निरंतर वृद्धि जारी है आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2020 और 21 के दौरान देश में खाद्यान्न उत्पादन बीते 5 वर्ष में सर्वाधिक रहा सोचने और समझने की बात है कि देश में विगत कई वर्षों से जो हमारे खेती का क्षेत्रफल है वह सीमित है लेकिन किसानों और वैज्ञानिकों की मदद से हाईटेक खेती को अपनाते हुए खाद्यान्न उत्पादन लगातार बढ़ रहा है जिसके लिए देश के किसान और वैज्ञानिक बधाई के पात्र हैं, 50 प्रतिशत योगदान कृषि क्षेत्र स्वतंत्रता के पश्चात 10 वर्ष तक जीडीपी में करता रहा है वर्ष 2000 15 और 16 में यह 15.4 प्रतिशत रह गया 54.6 प्रतिशत आबादी वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार कृषि क्षेत्र से जुड़ी है 17.8 प्रतिशत योगदान 2019 और 20 में देश के सकल मूल्य संवर्धन जी बी ए में कृषि संबंधित गतिविधियों का रहा है 3.6 प्रतिशत की दर से कृषि क्षेत्र ने वर्ष 2020 और 21 में देश की अर्थव्यवस्था महामारी के कठिन समय में संभाला है 6000 किसान सम्मान निधि योजना में प्रति वर्ष 3 किस्तों में किसानों को दिए जा रहे हैं जिसका सीधा लाभ किसानों को मिला है इसके अलावा प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना 2016 में शुरू की गई है जिससे भी देश के किसान लाभान्वित हो रहे हैं।

क्या है ड्रोन

ड्रोन एक ऐसा मानव रहित विमान है जिसे दूर से ही नियंत्रित तरीके से उड़ाया जा सकता है इसके खेती में प्रयोग की अपार संभावनाएं हैंद्य एक सामान्य ड्रोन की संरचना चार विंग यानि पंखोवाला होता है। इसलिए इसे क्वाड कॉप्टर भी कहा जाता है। असल में यह नाम इसके उड़ने के कारण इसे मिला यह बिल्कुल एक मधुमख्खी की तरह उड़ता है और एक जगह पर स्थिर भी रह सकता है। ड्रोन को कई तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे उसके उड़ने की ऊंचाई के आधार पर, उसके आकार के आधार पर, उसके वजन उठाने के क्षमता के आधार पर, उसके पहुंच क्षमता के आधार पर इत्यादि परन्तु मुख्य रूप से इसके वायु गतिकीय के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय मोदीपुरम मेरठ–250110
ई–मेल : sengarbiotech7@gmail.com

किसानों के लिए ड्रोन लाभकारी

सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में आज ड्रोन के माध्यम से खेतों में कीटनाशकों व खरपतवार नाशक रसायनों का छिड़काव करने का प्रदर्शन किया गया इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलपति डॉक्टर आरके मित्तल ने किया उन्होंने अपने संबोधन में कहा कि ड्रोन किसानों के लिए काफी लाभकारी साबित होगा।

कुलपति डॉक्टर आरके मित्तल ने कहा ड्रोन एक तकनीक से परिपूर्ण होने के कारण युवा पीढ़ी को अवश्य ही आकर्षित करेगा और खेती की तरफ कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करेगा इसकी भविष्य में अति आवश्यकता है इस समय बहु आयामी क्षमताओं से परिपूर्ण ड्रोन कृषि उत्पादन में प्रबंधन के लिए बहुत योगी और लाभप्रद साबित होगा ब्राउन पर भारत के साथ–साथ कई अन्य देशों में गहन अध्ययन जारी है इसको कृषि के विभिन्न कार्यों में दक्षता व सरलता से प्रयोग में लाया जा सकेगा उन्होंने कहा कि पश्चिम उत्तर प्रदेश के किसान भी इसको खरीद कर अपनी खेती किसानी में प्रयोग कर सकेंगे अब वह दिन दूर नहीं है जब ड्रोन का रिमोट किसानों के हाथ में होगा इसके लिए कृषि विश्वविद्यालय प्रयास कर रहा है और आज परिसर में इसका प्रदर्शन करके इसकी संभावनाएं और बढ़ा दी है।

कुलपति डॉक्टर मित्तल ने बताया की समय व जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ खेती में जहां समस्याओं का आकार व स्वरूप बदला है वही किसानों पर लागत में कमी लाते हुए अधिक उत्पादन का दबाव भी बड़ा है ऐसे में किसानों की आय को दुगनी करने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक खेती के नए तौर तरीके अपनाए जाने होंगे इसमें आधुनिक कृषि मशीनों तथा अन्य उपकरणों का विशेष तौर पर उपयोग करना होगा उन्होंने बताया कि ड्रोन एक बहुत ही महत्वपूर्ण मशीन है जो खेती के लिए काफी उपयोगी है।

उन्होंने कहा की जहां पर यह किसानों के स्वास्थ्य के साथ–साथ उनके समय को बचाएगा वही उनके खर्चे में भी कमी आएगी और नैनो फर्टिलाइजर आदि का समान रूप से छिड़काव अपने खेत में किसान बहुत ही कम समय में कर सकेंगे।

कृषि में ड्रोन की बढ़ सकेगी भूमिका

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपारिक हवाई वाहनों की अपेक्षा उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है ड्रोन खेतों के हालात जानने के लिए डाटा उत्तरण और उनका विश्लेषण करने ऐसे कार्यों में विभिन्न अवयवों व घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है।

प्रोफेसर आर एस सेंगर ने बताया कि इस ड्रोन की कीमत लगभग रु0 600000 आती है इसके टैंक की क्षमता 10 लीटर तक की गुल को लेकर आसानी से खेत बिछड़ा सकता है 15 मिनट में लगभग 1 एकड़ क्षेत्रफल में अच्छी तरह से छिड़काव इसे छिड़काव करने पर समय की बचत के साथ–साथ लेवर की भी बचत होती है।

डॉ सेंगर ने बताया ऐसी परिस्थितियां जहां परंपरागत मशीनों का उपयोग करना चुनौतीपूर्ण है वहां पर इसका उपयोग किया जा सकता है जब किसानों के खेत गीले हो उसमें चलने में कठिनाई हो रही हो इसके अलावा गीले धान का खेत हो गन्ना हो मक्का व कपास की फसल नारियल और चाय बागान लीची के बागान आम के बागान इत्यादि में विभिन्न ऊंचाइयों पर जाकर ड्रोन की सहायता से आसानी से छिड़काव किया जा सकता है।

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपारिक हवाई वाहनों की अपेक्षा उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है ड्रोन खेतों के हालात जानने के लिए डाटा उत्तरण और उनका विश्लेषण करने ऐसे कार्यों में विभिन्न अवयवों व घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता हैद्य कृषि विश्वविद्यालय में ड्रोन के द्वारा किए गए छिड़काव को देखकर किसानों ने प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि यह तकनीक भविष्य में किसानों के लिए काफी

लाभकारी होगी इस अवसर पर प्रेमपाल सिंह अखिल कुमार प्रमोद आदि लोग मौजूद रहे।

सीड कॉप्टर ड्रोन से बीजारोपण

कोरोना काल में मानव संक्रमण के खतरे को देखते हुए एआई i40 जैसी तकनीक काफी कारगर साबित हुई है ड्रोन ने बुजुर्गों एवं क्वारंटाइन किए गए लोगों तक दवाइयों की इमरजेंसी डिलीवरी कराने लोगों के मुंह मेंट पर निगरानी रखने में भी अहम भूमिका निभाई है ड्रोन तकनीक से एक सीमित समय में एक क्षेत्र में 50 गुना अधिक गति से सैनिटाइज किया जा सकता है इससे क्रॉप इंफेक्शन का खतरा नहीं रहता जिससे संक्रमण पर भी काबू पाया जा सकता है देश में कई प्रकार के ड्रोन विकसित हो चुके हैं जिससे पब्लिक मॉनिटरिंग वार्निंग ड्रोन आदि के लिए उपयोग किया जा रहा है आज ड्रोन के माध्यम से तेजी से बीजारोपण भी किया जा सकता है यदि बुवाई में ड्रोन का उपयोग तेजी से बड़ा तो निश्चित रूप से देश में एक ड्रोन क्रांति अवश्य कुछ ही वर्षों में दिखाई देगी कंपनियों के द्वारा कई ऐसे ड्रोन विकसित किए गए हैं जिससे 20 से 25 एकड़ खेत की बुवाई कम समय में आसानी से की जा सकती है इन ड्रोन में एक बार में 25 से 30 किलो बीज रखकर आसानी से बुवाई की जा सकती है पूर्णता स्वचालित यह ड्रोन 1 घंटे में 10 एकड़ खेत में बुवाई कर सकते हैं ड्रोन से दवा के छिड़काव के लिए किसानों को खुद खेत में नहीं जाना पड़ेगा इसे भारत में निर्मित सबसे बड़ा ड्रॉन माना जा रहा है जिसे भारत के किसानों की जरूरतों को ध्यान में रखकर डिजाइन किया गया है।

खेती में ड्रोन की उपयोगिता

- कीटनाशक व खरपतवार नाशक रसायनों के छिड़काव में
- फसल में रोगों व कीटों के स्तर की जांच व उपचार मेंखेतों की भौगोलिक स्थिति का आकलन करने में
- तरल और ठोस उर्वरकों का छिड़काव करने में
- फसल अवशेषों के अपघटन के लिए जैविक रसायनों का छिड़काव करने में
- सिंचाई व हाइड्रोजेल का छिड़काव करने में
- खेतों एवं जंगलों में बीजों का छिड़काव करने में
- फसल को कीटों एवं टिड्डियों के आक्रमण से बचाने में
- मवेशियों व जंगली जानवरों से फसल को बचाने में
- मृदा के 3D मानचित्र के विश्लेषण में

युवाओं को कृषि में देगा रोजगार

ड्रोन रोजगार का एक ऐसा क्षेत्र है इसमें ड्रोन का परिचालन पायलटिंग सीख कर ऐसी युवा जिनकी आयु 18 वर्ष से अधिक है लगभग 20 से रु0 30000 प्रति माह की कमाई आसानी से कर सकेंगे इसके लिए पायलट के पास प्रशिक्षण प्रमाण पत्र होना आवश्यक है देशभर में कई सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं ने ड्रोन प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ कर दिए हैं युवाओं में ड्रोन के प्रति नया उत्साह देखने को मिल रहा है।

नगर विमानन महानिदेशालय के अनुसार ड्रोन को टेक ऑफ वेट के अनुसार पांच भागों में वर्गीकृत किया गया है

- नैनो 250 ग्राम से कम या बराबर(सूक्ष्म)
- 250 ग्राम से बड़ा और 2 किलोग्राम से कम या बराबर(मिनी)
- 2 किलोग्राम से बड़ा और 25 किलोग्राम से कम या बराबर(बड़ा)

150 किलोग्राम से बड़ा व्यवसायिक क्षेत्र में इन को उड़ाने के लिए भारत सरकार द्वारा बनाए गए मापदंडों व नियमों का पालन करना अनिवार्य है।

ड्रोन कृषि प्रबंधन के संचालन के लिए पारंपरिक हवाई वाहनों की अपेक्षा उच्च परिशुद्धता और कम ऊंचाई की उड़ान भरकर छोटे आकार के खेतों में कार्य करने की क्षमता रखता है ड्रोन खेतों के हालात जानने के लिए डाटा एकत्र और उनका विश्लेषण करने व ऐसे कार्यों में विभिन्न आवेदन वाह घटकों के उचित और सटीक रूप से प्रबंधन में सहायक सिद्ध हो सकता है ऐसी परिस्थितियां जहां परंपरागत मशीनों का उपयोग करना चुनौतीपूर्ण साबित हुआ है वहां पर ड्रोन काफी सफल साबित हो सकते हैं इनके उपयोग से खेती की उत्पादकता को आसानी से बढ़ाया जा सकता है उदाहरण के लिए गिरे धान का खेत गन्ना मक्का व कपास की फसल नारियल और चाय बागान बागवानी के क्षेत्र में आम के पेड़ों, लीची के पेड़ों आडू इत्यादि के पेड़ों में ड्रोन की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण व उपयोगी है क्योंकि इस टेक्नोलॉजी से इन बड़े–बड़े वृक्षों पर आसानी से समान रूप से दवाइयों का छिड़काव करके रोग नियंत्रण अथवा कीट नियंत्रण में सफलता हासिल की जा सकती है टेक्नोलॉजी के विकास के साथ–साथ ड्रोन के कलपुर्जे सस्ते और दक्ष पूर्ण होंगे इनसे लंबे अंतराल के लिए हवा में सस्ती उड़ान भरी जा सकेगी इनका उपयोग कृषि प्रबंधन में आर्थिक रूप से भी फायदेमंद

साबित होगा कृषि कार्यों में उपयोग करके इसे कम आमदनी का जरिया मानकर युवा पीढ़ी का खेती से मोहभंग हो रहा था लेकिन अब नई टेक्नोलॉजी और डॉन जैसी टेक्नोलॉजी के आ जाने से लोगों का आकर्षण इस और बढ़ेगा और युवा अब गॉव में ही रह कर खेती की ओर आकर्षित होंगे और नई टेक्नोलॉजी का समावेश कर उच्च गुणवत्ता युक्त फलों एवं फल फूलों का उत्पादन कर सकेंगे यह एक अच्छी सुख सुविधाओं और ऊंची पगार की नौकरी के लिए भी शहरों की ओर विस्थापित हो रहे युवाओं को रोकने में काफी सफल साबित होगी ड्रोन नई तकनीकी से परिपूर्ण होने के कारण युवा पीढ़ी को अवश्य ही आकर्षित करेगा और खेती की तरफ कदम बढ़ाने के लिए युवाओं को प्रेरित करेगा इसकी भविष्य में अति आवश्यकता है इस तरह विभिन्न क्षमताओं से परिपूर्ण ड्रोन कृषि उत्पादन में प्रबंधन के लिए बहुत लाभप्रद साबित होगा। ड्रोन पर भारत के साथ–साथ कई अन्य देशों में गहन अनुसंधान लगातार जारी है इसको कृषि के विभिन्न कार्यों में दक्षता व सरलता से प्रयोग में लाया जा सकेगा वह दिन दूर नहीं है जब ड्रोन का रिमोट किसान के हाथ में होगा और मोबाइल की तरह इसे अपने जीवन में तेजी से अपना कर इससे भरपूर फायदे के लिए खेतों पर चलते हुए नजर आएंगे। सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय में ड्रोन टेक्नोलॉजी का प्रदर्शन और इसका लॉन्चिग की गई इस दौरान देखा गया कि कृषि विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में आने वाले विभिन्न कृषि विज्ञान केंद्रों के किसानों ने इस टेक्नोलॉजी को बहुत पास से इसके प्रदर्शनों को देखा और इसको किसानों के लिए काफी उपयोगी बताया किसानों का मानना है कि यदि ड्रोन की कीमत कम हो जाती है या फिर सरकारी स्तर पर खरीद कर किसानों को न्यूनतम दर पर छिड़काव के लिए ड्रोन उपलब्ध होते हैं तो निश्चित रूप से कृषि के क्षेत्र में ड्रोन एक परिवर्तन लाने में सफल साबित होंगे हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आने वाले समय में किसान ड्रोन के रिमोट को अपने हाथ में लेकर अपनी खेती में एक क्रांति लाएगा जो कि सदाबहार क्रांति को लाने में एक नई दिशा प्रदान करेगा।

देश में ड्रोन हब बनाने के लिए बढ़ते कदम

हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पिछले दिनों मन की बात कार्यक्रम में युवाओं से भारत को ड्रोन तकनीकी से अग्रणीय देश बनाने का आवाहन किया था नई ड्रोन नीति 2021 के अनुसार वर्ष 2030 तक भारत को वैश्विक ड्रोनेहब के रुप में विकसित करने की योजना भारत सरकार ने बनाई है स्कूलों कालेजों के विद्यार्थी भी इसमें खूब रुचि ले रहे हैं दोस्तों आज हम सभी लोग यह देख रहे हैं कि ड्रोन का सफल प्रयोग वैक्सीन दवाइयां खाना पहुंचाने से लेकर आपदा प्रबंधन सुरक्षा देश के बॉर्डरओं की निगरानी कृषि कार्यों में दवाई छिड़कने तथा कीट नियंत्रण के लिए इसके अलावा बीजारोपण आदि में किया जा रहा है।

यह कहना कतई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आने वाले समय में भारतीय कृषि परिदृश्य में ड्रोन टेक्नोलॉजी को बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करते हुए देखा जाएगा कृषकों की आय बढ़ाने में भी इसकी अहम भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि आने वाली सदी में यह टेक्नोलॉजी किसानों के गांव में बहुत तेजी से दस्तक देगी।

अवधी कविता

बनारस

❑ अज्ञात

सुबह बनारस शाम बनारस
विश्वनाथ क धाम बनारस
बुढ़ऊ देखा दऊड़त बाटन
खा के लँगड़ा आम बनारस
गरम कचौड़ी गरम जलेबा
भूले ना मेहमान बनारस
घंटन मुहं मां मस्त जमलबा
चउचक मघई पान बनारस
गली पकड़ के सरपट भागा
सड़क त हउवे जाम बनारस
उलटी गंगा इहाँ बहत बा
अउर न कउनो धाम बनारस
गंग आरती देख के सबकर
छाती गैइल जुड़ान बनारस
छत के ऊपर चिता जलतबा
अइसन हौ शमशान बनारस
घाट सबै बतलावत हउवन्
हौ मुक्ती क धाम बनारस
सारनाथ मे पहिलै शिक्षा
बौध धर्म क शान बनारस
भिक्षा से हि दिव्य बनलबा
शिक्षा क संस्थान बनारस
तुलसी अउर कबीर क नगरी
सगुण अउर निगुणान बनारस
रामनगर क लीला देखा
सतयुग क पहचान बनारस
राड़ साँड़ सीढ़ी सन्यासी
सबकर हौ सम्मान बनारस
घर घर साड़ी घर घर करघा
प्रमुख इहाँ क काम बनारस
तीन लोक से न्यारी काशी
अइसन हौ पहिचान बनारस
सुबह बनारस शाम बनारस
विश्वनाथ क धाम बनारस

Agriculture

Upgrading Farmers Involved in Agriculture Practices

❑ **Shivom Singh and Kajal S. Rathore**

India is bestowed with diversified climate and also a major portion of population is vegetarian and hence dependent of the grains and vegetables. Undertaken crops, assumes to provide food security, agricultural development, self-dependence & enhancement of economy of the country. The change in global climate is now generally considered to be underway and is expected to result in a long-term negative impact on agricultural practices. There is significant amount of yield, reduced sugar content, bad coloration, and reduced storage stability in fruits; increase of weeds, blights, and many other harmful effects on quality and quantity of agricultural crops.

The agriculture sector in India employs more than 90 million people and contributes 15.4 % gross value addition to the Indian economy. The performance of the agriculture sector has remained inconsistent due to low productivity that is driven by lack of access to basic inputs as well as macro-environment issues like drought, flood, etc. This is accentuated in the poor socio-economic condition of the farmers. A reduction in crop and agriculture land may result in reduced income for farmers and agribusiness, increased prices for food and timber, unemployment, reduced tax revenues because of reduced expenditures, foreclosures on bank loans to farmers and businesses, migration, and disaster relief programs.

In current scenario, these climatic factors are (drought, flood considered as a foremost factor for deepen the distress for the cultivators. These facts represent a serious threat to sustainable food production and farm crisis and reports the highest number of farmer's suicides in the country. Therefore, the output would be of direct benefit to small farmers by increasing on-farm production, diversifying production options and increasing farm incomes from marketed products. Development of sustainable agriculture, commercial formulation and delivery system of potential bioagents for farmers will be done.

Orienting production options to market opportunities through value-added product, such as organically grown wheat, rice, millet and vegetables will help farmers move from subsistence production to income generating avenues. Vegetables being cash crops and short duration crops, need intensive management. Over the years, low rain and water stress conditions have increased steeply input prices and undermines incomes which shatters confidence of farmers. Use of bioagents and its efficacy in cultivation reveals that intensive cultivation without complete reliance on chemical fertilizers is perfectly feasible. An area wise adoption of such sustainable practices and technologies would rebuild confidence of farmers in the practices that regenerate agro-biodiversity or make better use of local natural resources. The stress tolerance mechanism of crop, should be studied for the development of technology.

In the past half-decade Indian government paying attention in upgrading the farming segment and therefore, agriculture has been one of the key focus areas during successive Union Budgets. 'PARMPARAGAT KRISHI VIKAS YOJANA' of Indian Government (budget 2016-17) promote organic farming by bringing awareness in farmers about bioagents. The last two budgets have seen increased focus and attention by the government on these two basic inputs of agriculture soil and water and is providing ecosystem support and incentivise the universities that are willing to focus on research and development and innovations in the agriculture sector.

Sustainable agriculture not only reduce the demand of chemical fertilizers but also helps in moving toward a farming system that is more sustainable: environmentally, economically, and socially. Among other things, this involves: (a) economic & social benefits would flow from the increased income of farmers as a result of improved yield, reduced impact of chemicals and contribute towards solving food security issues in changing climates. (b) There are a range of potential environmental benefits, once this information is available, they can be evolved in response to different environmental challenges.

This technology could be adopted in fields to improve the rate of growth and enhance productivity and also helps reducing chemical

Department of Environmental Science, ITM University Gwalior, MP, India
*Department of Biotechnology, Govt. KRG (Auto.) PG College, Gwalior, MP, India
*Corresponding author: drkajals101@gmail.com

fertilizers use and subsequently reduces the cost of seedling production. As well, School drop outs and less skilled farmer involved in agriculture practices with poor economic status will be selected to training of the technology. Efforts will also be made to include women since the hill agriculture is mostly based on women. On farm field demonstrations for popularization of the technology will be organized. For the awareness and promotion of farmers towards organic mode of farming and Indian government policies, extension booklets/ folders, posters and charts covering all the interventions subjects such as sustainable and cost-effective agriculture and women's economic empowerment will be used for value addition and to make the programme most effective.

India is a global agricultural power house, but still facing challenges in overall development and the improved welfare of our farmers. Even today most of the farms are operated on a part-time, semi-commercial basis, and a majority of local farmers were either unaware of or lacked access to agricultural innovations, technologies and techniques that were common in many other countries. In an effort to boost yields, reduce water consumption, and improve waste and by-product management, the government, NGOs should establish the Farmer's Service Centre, that has a mandate to provide technical expertise, marketing and supply chain support to farmers.

Policy makers will thus need to initiate and/or conclude policy actions and public programs to shift the sector away from the existing policy and institutional regime that appears to be no longer viable and build a solid foundation for a much more productive, internationally competitive, and diversified agricultural sector.

हरियाणवी रागनी

शहीद भगत सिंह

❑ **प्रो0 रणबीर दहिया, रोहतक**

शहीद भगत सिंह पर रचित एक रागनीः

भगतसिंह नै अपनी निभाई ईब हम अपनी निभावांगे ।।
इंसानियत का विचार उनका पूरी दुनिया मैं पहोंचावांगे।।
इंसानियत भूलकै समाज हैवानियत कान्ही चाल पड़या
शोषण रहित समाज का सपना चौराहे पै बेहाल खड़या
थारा संगठन जिस खातर लड़या उस विचार का परचम फैहरावांगे।।
तेईस साल की कुल उम्र चरों कान्ही तैं इतना ज्ञान लिया
बराबर हों इंसान दुनिया के मिलकै तमनै ब्यान दिया
मांग महिला का सम्मान लिया थारी क्रांति का झंडा लैहरावांगे।।
हंसते हंसते फांसी चूमगे इंकलाब जिंदाबाद का नारा लाया
बम्ब गैर कै एसैम्बली मैं नारा अंग्रेजां कै था याद दिलवाया
मिलकै सबनै प्रण उठाया गोरयां नै हम बाहर भजावांगे।।
जेल मैं पढी किताब के थोड़ी नोट किया सब डायरी मैं
आतंकवादी का मतलब समझां फर्क समझां क्रांतिकारी मैं
कहै रणबीर बरोने आला घर घर थारा सन्देश लेज्यावांगे।।

Environment

Methods for Reduction of Arsenic from Cooked Rice

❑ Apoorv Gupta[1], Ravi Kumar Tiwari[2], Dr. Sanjay Dwivedi[3], Dr. Seema Mishra[4]

1. Introduction

According to International Agency for Research on Cancer, arsenic (As) is a well-known non-threshold class 1 carcinogenic element (IARC-2006). The World Health Organization (WHO) recognized the arsenic poisoning calamity as "the largest poisoning of a population in history" (Smith et al. 2000). It is well established that prolong dietary intake of arsenic causes serious diseases such as melanosis (dark spots and white spots on skin), hyperkeratosis (hardening of skin), gangrene (bacterial infection), respiratory diseases (tuberculosis, sarcoidosis), peripheral vascular disease (black foot disease), diabetes, hypertension, cardiovascular diseases, neurological diseases, metabolic diseases and even cancer (skin cancer, lung cancer and bladder cancer) (Guha-Mazumder et al. 2000; Morales et al. 2000; Srivastava et al. 2001; Rahman 2002; Sanchez et al. 2016). Arsenic is a metalloid which occurs naturally in combination with many minerals, particularly sulfide in which arsenopyrite (FeAsS), orpiment (As_2S_3), and realgar (AsS/As_4S_4) are the most common As sulfide minerals. The most abundant of these minerals is pyrite, commonly containing 0.02–0.5% As, however as high as upto 5% As content is reported in pyrite. Due to its natural presence, it also releases in ground water by different chemical processes. The problem of ground water As contamination is now widespread throughout the world including parts of United States, Argentina, Pakistan, Mexico, Thailand, Chile, Nepal, Vietnam, Myanmar, China, Germany, India, Bangladesh and many other countries (Chowdhury et al. 2000; Smith et al. 2000; Anawar et al. 2002; Mitra et al. 2002; Pandey et al. 2002; Mishra et al 2016). However, the extent of As contamination is most severe in Bangladesh and many states of India (Mishra et al. 2016; **Srivastava et al. 2016**). In India, eighteen states and three union territories has been found to be arsenic contaminated to different extents, mostly due to naturally contaminated ground water. There are only a few exceptions of anthropogenic As contamination. Among these, (Mishra et al 2016). People inhabiting in these As affected areas not only consume As through drinking water but also from various food sources, such as, As tainted cereal grains, vegetables, milk and milk products of animals (Cow, Buffalo and Goat) (Williams et al. 2005; WHO 2001). The common range of As accumulation in agricultural plants has been reported from 7 μgKg^{-1} to 7500 μgKg^{-1} around the world (Liao et al. 2005; Dahal et al. 2008). While the level of As in commonly grown agricultural produce of West Bengal, such as potato, rice, wheat, cumin, turmeric ranges from 0.4 to 693 μgKg^{-1} (Roychowdhury et al. 2002). In which, potato skin and rice are found to accumulate highest amount of As in comparison to other agricultural food produce (Roychowdhury et al. 2002; Bhattacharya et al. 2010). A two year field trials was conducted in As contaminated paddy fields of West Bengal, India to assess total As content in rice grains. Eighty nine rice cultivars were cultivated at three different sites having variable soil-As level. The level of As in rice grain ranged from 89-1196 μgKg^{-1}. Study concluded that both rice genotype and soil As level play role in grain As accumulation (Tripathi et al 2015). Other studies in West Bengal also showed that the As accumulation in crops, cereal grains and vegetables are several fold higher than non-contaminated areas (Dwivedi et al. 2010; Tripathi et al 2012). The dietary As exposure has caused severe health issues to local inhabitants. Rice is particularly more efficient in accumulating As in comparison to other cereal grains. Since half of the world's population depends on rice-based diet, thus rice has become the major source of dietary As intake, particularly for those living in As contaminated areas. Several laboratory and field studies have been done to minimize As accumulation in rice grain, these includes agronomic practices, soil amendments genetic approaches.

Recent studies have indicated that the properties of paddy soil, their microbial activities and rice genotypes play the major role in the accumulation of total As in rice grains (Zhao et al. 2009; Senanayake and Mukherji 2014; Chen et al. 2017; Kumarathilaka et al. 2018a &b). The genotypic variation in rice have shown possibility for characterization and selection of low As accumulating rice varieties (Tripathi et al 2015) or high root iron plaque formation

[1]Deen Dayal Upadhyaya Gorakhpur University, Gorakhpur, 273009 (U.P.), India
[2]Plant Ecology and Environmental Change Science Division, CSIR-National Botanical Research Institute, Lucknow-226001, India; Mob. No.: +91 9415787993 Email: seema_mishra2003@yahoo.co.in

varieties (Dwivedi et al 2010). Agronomic practices like water management (aerobic irrigation system) (Rahman and Sinha 2013; Mukherjee et al. 2017); implementing different nutrients *viz.* silicon, phosphate, sulfur, and nitrogen has been suggested to reduce As accumulation (Senanayake and Mukherji 2014; Farrow et al. 2015; Seyfferth et al. 2016; Li et al. 2019; Dwivedi et al. 2020). Recently, immobilization of As in soil by the application of nanoparticles such as, nanoparticles of iron and zinc oxide in As-contaminated paddy soils has also been studied for alleviation of As in rice (Han et al 2021; Yan et al 2021). Apart from these, some of the biological methods like use of microorganisms and transgenic approaches for development of low As accumulating rice have also been studies (Meng et al. 2011; Li et al. 2016; Gustave et al. 2018). All these practices have shown potential to decrease As accumulation in rice grains to various extent. But according to calculation of MTDI (2 μgkg^{-1} body weight) on rice based diet, the level of As, even after use of above methods, is still higher in the rice grain. Therefore, other alternatives, such as post-harvest As mitigation techniques also needs to be explored to further minimize As from the platter.

In this article we have summarized the different post-harvest approaches for As mitigation, which can be applicable in rural areas. These broadly includes post-harvest mechanical treatments (dehusking and polishing), pre-cooking (washing and soaking), and during cooking (cooking in different rice to water ratio) treatments which effect As levels in cooked rice. During use of these methods, the effect on other essential, toxic elements and vitamins are also discussed.

2. Different method for As removal from rice grain

2.1 Dehusking and polishing

There are several methods for the dehusking of rice like dry dehusking, wet dehusking and dehusking after parboiling. Dry dehusking is a process in which paddy rice is dehusked directly without any treatment, while wet dehusking is a process in which paddy rice is first soaked overnight in water in 1:1.5 rice to water ratio and then boiled at 105°C for 1 hour and afterwards dehusked manually. In this regard, Signes et al. (2008) compared dry dehusking and wet dehusking on rice samples collected from West Bengal, India. They found that the level of As in dry dehusked rice grains contains significantly less As in comparison to wet dehusked rice. The As content in dry dehusked rice was found to be of 339 μgkg^{-1}, while in wet dehusked rice it was 507 μgkg^{-1} which is 49.5 % more as compared to dry dehusked rice. The increase in the level of As in wet dehusked rice was due to the use of As contaminated water (40 μgkg^{-1}) for soaking and boiling. The increase in As content is wet dehusked rice is supposed to be due to the use of As contaminated water for boiling. In contrast to wet dehusking, the parboiled (boiling followed by drying) and dehusked rice showed 31% reduction in As content in comparison to non-parboiled rice (Rahman et al. 2007). Therefore, based on the studies of dehusking of rice it is evident that dehusking after parboiling of paddy rice reduces more As content in rice grain as compared to other dehusking processes. The dehusked rice, commonly referred as brown rice, undergo polishing to get white rice before marketing or being used for cooking. It has been observed that polishing also removes As from white rice. Naito et al. (2015) compared different degree of polishing and observed that 5% polishing reduces up to 38% As, whereas 10% polishing reduces up to 50 % of As as compared to brown rice. Further, Pedron et al. (2019) also found that increasing the level of polishing, in terms of polishing time, decreases the level of As in rice viz., 20, 40 and 60 seconds of polishing reduced 41%, 38% and 55% of As, respectively. Although, polishing also greatly reduces the level of essential elements like Mn, Zn, Fe, Cu, Se and Co in comparison to unpolished rice.

2.2 Soaking of rice prior to cooking

Although rinsing and then soaking of rice prior to cooking is commonly practiced in many households to reduce cooking time. But it has been studied only recently as an effective method for washing out As. Based on the various studies we have categorized soaking treatments in two subcategories such as: soaking at different temperature, and soaking at different pH of the soaking solution. The efficacy of both treatments is described briefly below:

a. Soaking with temperature variation

Chen et al. (2020) studied effect of soaking on the removal of inorganic As in rice. They observed that soaking of rice at room temperature for 1 hour and 8 hour in 1:10 rice to water ratio reduces inorganic As by 22% and 52%, respectively. Whereas soaking at 80°C (above gelatinization temperature) reduces an average 40% of the inorganic As in only 10 minutes. Therefore, it is evident that soaking at higher temperature is more efficient in removing As in significantly lesser time compared to room temperature.

b. Soaking with pH variation

There are several studies for As removal in rice depending on variation in the pH of the soaking solution. For this purpose different easily accessible edible acids such as acetic acid (vinegar) and citric acid (lemon) has been used. Use of acetic acid did not result in removal of As. For instance, Pedron et al. (2019) studied the effect of varying concentration of acetic acid (0, 1 and 5%) in rice soaking water and observed a decrease in the leaching of As from rice grain with decreasing pH. Whereas, Zhang et al. (2020) found no

2.3 Washing and cooking in different rice to water ratio

difference in the As content in soaked rice when compared with unsoaked rice at different concentration of acetic acid (0.5%, 1%, 1.5% and 2%). In contrast, washing with citric acid resulted in significant amount of As removal from rice grain. Pogoson et al. (2021) studied the effect of cooking rice in excess water (1:5 rice to water ratio) and pre-soaking at different pH by using different concentrations of citric acid (0, 0.0001, 0.001, 0.01, 0.1 and 1 M solution, in 1:5, rice: water ratio). Cooking in excess water resulted in 33% reduction in As while, soaking in citric acid solution for 12 h followed by cooking in excess water resulted in 54% As reduction. They further analyzed the effect of calcium carbonate for neutralizing the pH. For, this purpose, citric acid soaked rice was rinsed by double distilled water and further soaked in 1 M calcium carbonate solution for 12 hrs. Afterwards the rice was cooked in excess water, this treatment resulted in further decrease in As i.e. 62% lower As . During these combinations, reduction of *i*As and DMA was 81% and 66%, respectively. Cooking in excess water also resulted in reduction in other nutrient elements, such as, P (67%), Zn (33%) and K (83%), pre-soaking in citric acid further reduces K, Zn and S but not P and Ca to major consequence.

2.3 Washing and cooking in different rice to water ratio

Method of washing and cooking of rice has been also found to significantly affect the level of As in rice grain. Broadly two method of rice cooking are in practice, viz., complete absorption and straining method. In complete absorption method, rice is cooked in adequate amount of water which is completely absorbed by the rice during the cooking. This is the most widely used method in India. While in some part of India rice is boiled in plenty of water and excess water is strained after cooking. Several studies have been done aiming the reduction of As in rice through washing and cooking, the main findings are discussed below:

a. Effect of As contaminated water on the level of As in cooked rice

The water used for cooking rice also effects the level of As in cooked rice. For instance in As contaminated areas water used for cooking may also contain significant amount of As which would further increase the level of As in cooked rice. Bae at al. (2002) observed that cooking in 1:3 or 1:4 rice to water ratios with As contaminated water (containing 297 μgL^{-1} As) increased the level of As in cooked rice by 84% as compared to uncooked rice. Mandal et al., 2019 also found an average 56 ± 25% increase in As in rice grain when cooked in As contaminated water (132 ± 33 μgL^{-1} As), while reduction of 80% of As was observed in rice when cooked in As free water in excess volume. Thus, using contaminated water for rinsing and cooking may not be a good option for removing As from rice grain.

b. Washing and cooking in different rice to water ratio

Frequency of washing and volumes of water for cooking rice has been found to have significant effect on the As content in cooked rice. Washing rice for three times in 1:2 rice to water ratio and cooking in 1:6 rice to water ratio reduces As by 45% in cooked rice (Mihucz et al. 2007 & 2010). Whereas, cooking rice in 1:2.5 rice to water ratio after washing in 1:6 rice to water ratio result in 6% while both washing and cooking in excess water (i.e. 1:6 rice to water ratio for both) resulted in decrease upto 33% As in cooked rice (Raab et al. 2009). Halder et al. (2014) also found 33% reduction in As content in cooked rice using 1:6 rice to water ratio both for washing and cooking. Gray et al. (2016) used similar rice to water ratio (1:6) for washing and used different amounts of water for cooking. They observed upto 6%, 35% and 48% reduction in As content in cooked rice by cooking in 1:2, 1:6 and 1:10 rice to water ratio. Mwale et al. (2018) also found up to 30% reduction in As by using 6 times excess water for cooking. Increasing the frequency of washing by five times and the cooking in twice and four times excess water removed 25% and 44% As (Sharafi et al. 2019). Washing rice three times in excess water (1:6 rice to water ratio) and then cooking in (1:3) rice to water ratio to complete absorption of water results in 38% As reduction while cooking in (1:6) rice to water ratio results in 62% As reduction. Cooking rice in (1:10) rice to water ratio after washing the raw rice in (1:6) rice to water ratio reduces 49% of As in cooked rice (Atiaga et al. 2020). However, Mandal et al. (2019) determined the As concentration in raw and cooked rice in the household As affected Chakudanga village of Chakdaha block in Nadia district, West Bengal, a one of the high As contaminated village of Nadia district (Biswas et al., 2011). In this study rice was cooked using milli-Q water from laboratory and ground water in individual household of the studying region. Rice was washed 3 to 4 times and soaked for 15 to 20 minutes before cooking in excess water and water was strained after cooking. Concentration of As in ground water used for cooking was found to be in the range of 90-230 μgL^{-1} They found that around 1.1-8.0 $\mu g\ kg^{-1}$ of As was removed in washing before cooking and mean of 56 ± 25% increase of As was found in the rice grain when cooked in As contaminated water, while reduction of 80% of As was observed in rice when cooked in As free water. From the above discussion, it was found that all the studies performed in washing in (1:6) rice to water ratio and then cooking in 1:6 rice to water ratio reduced 30-35% As (Raab et al. 2009, Halder et al. 2014, Gray et al. 2016, and Mwale et al. 2018), and cooking in 1:10 rice to water ratio reduced about 48-49% of As (Gray et al. 2016, Atiaga et al. 2020). (Fig.i)

Thus, increasing washing frequency and using excess water for washing and cooking may remove 30-50% of As, however, it also removes other elements as well, various trace

elements. The studies discussed above reported reduction in Fe (20-64%), Zn (18-57%), Cu (12-30%), Co (20-30%), P (50%), K (45%), Mg (17%), Ca (8%), Mn (15-29%), Mo (52%), Se (21%), Ni (54%), Vitamin B1 (54-80%), Vitamin B3 (37-81%) and Vitamin B9 (59-84%), as well as other toxic elements like Cd (20-24%), Pb (27-44%).

The percent removal of As with increasing water volume for washing and cooking and at different frequency of cooking has been detailed in table 1.

3. Conclusion

The results of various studies carried out in last decades showed that washing, soaking and cooking in excess water significantly decreased the As content in the cooked rice. Cooking in excess water and straining extra water is better method than complete absorption method with respect to As removal, however, it also compromises the nutritional quality of the cooked rice, the level of vitamins and nutritional elements have been found decreased. It should also be noted that cooking of rice in As tainted water enhanced the level of As in the cooked rice. Thus, contaminated water must not be used for cooking of rice.

Acknowledgement

Authors are thankful to SEED-DST, New Delhi for providing the project grant (SEED/TIASN/2018/74), under which this work has been performed. Authors are also thankful to Director, CSIR-National Botanical Research Institute, Lucknow, and Department of Chemistry of DDUGU for providing the infrastructure and laboratory facilities to execute the experimental and data analysis work.

References:

1. Anawar, H.M., Akai, J., Mostofa, K.M.G., Safiullah, S. and Tareq, S.M., 2002. Arsenic poisoning in groundwater: health risk and geochemical sources in Bangladesh. *Environment international*, *27*(7), pp.597-604.
2. Arsenic, W.H.O. and Compounds, A., 2001. Environmental Health Criteria 224. *World Health Organization: Geneva, Switzerland.*
3. Atiaga, O., Nunes, L.M. and Otero, X.L., 2020. Effect of cooking on arsenic concentration in rice. *Environmental Science and Pollution Research*, pp.1-9.
4. Bae, M., Watanabe, C., Inaoka, T., Sekiyama, M., Sudo, N., Bokul, M.H. and Ohtsuka, R., 2002. Arsenic in cooked rice in Bangladesh. *The Lancet*, *360*(9348), pp.1839-1840.

Table 1: Efficacy of different methods for mitigation of arsenic during post-harvest, pre-cooking and cooking

Method	Treatment	Raw rice total arsenic concentration (μgKg^{-1})	Treated rice arsenic concentration (μgKg^{-1})	% Reduction of As	% Increase of As
Dehusking	*Wet Dehusking	339	507		49.5
Dehusking	Parboiled Dehusking	650	400	39	
Polishing	5% Polishing	256.33	158.66	38.1	
Polishing	10% Polishing	256.33	128.33	49.9	
Polishing	20 sec	650	386.75	40.5	
Polishing	40 sec	650	403.65	37.9	
Polishing	60 sec	650	295.1	54.6	
Cooking	*Cooking	173	318.6		84
Washing + Cooking	Washing for 3 times (1:2) + Cooking (1:6)	142.1	77.53	45.4	
Washing + Cooking	Washing (1:6) + Cooking (1:2.5)	198.5	187	5.79	
Washing + Cooking	Washing (1:6) + Cooking (1:6)	215.08	143.62	33.22	
Washing + Cooking	Washing (1:6) + Cooking (1:2)	236.33	221.33	6.3	

Washing + Cooking	Washing (1:6) + Cooking (1:10)	236.33	121	48.8	
Washing + Cooking	Washing + Cooking (1:2)	125.67	94.67	24.67	
Washing + Cooking	Washing + Cooking (1:4)	125.67	71	43.5	
Washing + Cooking	Washing (3 times) + Cooking (excess water)	240	47.45	80.23	
Washing + Cooking	Washing (1:6x3 times) + Cooking (1:3)	198	122	38.38	
Washing + Cooking	Washing (1:6x3 times) + Cooking (1:6)	198	75.28	61.97	
Soaking	pH variation soaking	57.5	21.28	63	

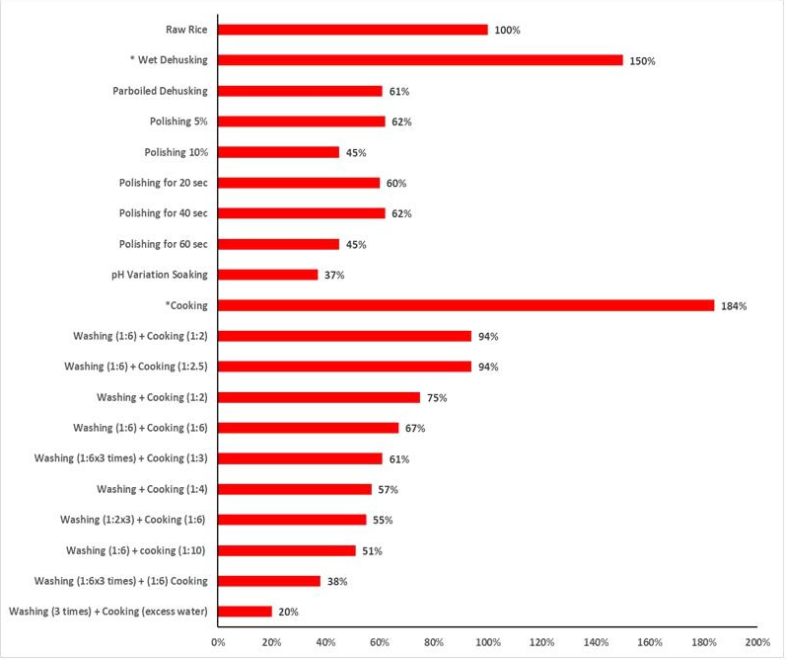

Fig. 1. Retention of Arsenic content in cooked rice by different cooking and dehusking method *'When rice cooked in As contaminated water

5. Bhattacharya, P., Samal, A.C., Majumdar, J. and Santra, S.C., 2010. Accumulation of arsenic and its distribution in rice plant (Oryza sativa L.) in Gangetic West Bengal, India. *Paddy and Water Environment*, *8*(1), pp.63-70.

6. Biswas, A., Majumder, S., Neidhardt, H., Halder, D., Bhowmick, S., Mukherjee-Goswami, A., Kundu, A., Saha, D., Berner, Z. and Chatterjee, D., 2011. Groundwater chemistry and redox processes: depth dependent arsenic release mechanism. *Applied geochemistry*, *26*(4), pp.516-525.

7. Chen, G., Lai, B., Chen, T., Lin, H. and Mao, X., 2021. Brief soaking at above gelatinization temperature reduces inorganic arsenic in cooked rice. *Cereal Chemistry*, *98*(1), pp.144-153.

8. Chen, Y., Han, Y.H., Cao, Y., Zhu, Y.G., Rathinasabapathi, B. and Ma, L.Q., 2017. Arsenic transport in rice and biological solutions to reduce arsenic risk from rice. *Frontiers in plant science*, *8*, p.268.

9. Chowdhury, U.K., Biswas, B.K., Chowdhury, T.R., Samanta, G., Mandal, B.K., Basu, G.C., Chanda, C.R., Lodh, D., Saha, K.C., Mukherjee, S.K. and Roy, S., 2000. Groundwater arsenic contamination in Bangladesh and West Bengal, India. *Environmental health perspectives*, *108*(5), pp.393-397.

10. Dahal, B.M., Fuerhacker, M.,

Mentler, A., Karki, K.B., Shrestha, R.R. and Blum, W.E.H., 2008. Arsenic contamination of soils and agricultural plants through irrigation water in Nepal. *Environmental pollution*, *155*(1), pp.157-163.

11. Dwivedi, S., Kumar, A., Mishra, S., Sharma, P., Sinam, G., Bahadur, L., Goyal, V., Jain, N. and Tripathi, R.D., 2020. Orthosilicic acid (OSA) reduced grain arsenic accumulation and enhanced yield by modulating the level of trace element, antioxidants, and thiols in rice. *Environmental Science and Pollution Research*, *27*(19), pp.24025-24038.

12. Dwivedi, S., Tripathi, R.D., Srivastava, S., Singh, R., Kumar, A., Tripathi, P., Dave, R., Rai, U.N., Chakrabarty, D., Trivedi, P.K. and Tuli, R., 2010. Arsenic affects mineral nutrients in grains of various Indian rice (Oryza sativa L.) genotypes grown on arsenic-contaminated soils of West Bengal. *Protoplasma*, *245*(1), pp.113-124.

13. Farrow, E.M., Wang, J., Burken, J.G., Shi, H., Yan, W., Yang, J., Hua, B. and Deng, B., 2015. Reducing arsenic accumulation in rice grain through iron oxide amendment. *Ecotoxicology and environmental safety*, *118*, pp.55-61.

14. Gray, P.J., Conklin, S.D., Todorov, T.I. and Kasko, S.M., 2016. Cooking rice in excess water reduces both arsenic and enriched vitamins in the cooked grain. *Food Additives & Contaminants: Part A*, *33*(1), pp.78-85.

15. Gustave, W., Yuan, Z.F., Sekar, R., Chang, H.C., Zhang, J., Wells, M., Ren, Y.X. and Chen, Z., 2018. Arsenic mitigation in paddy soils by using microbial fuel cells. *Environmental Pollution*, *238*, pp.647-655.

16. Halder, D., Biswas, A., Šlejkovec, Z., Chatterjee, D., Nriagu, J., Jacks, G. and Bhattacharya, P., 2014. Arsenic species in raw and cooked rice: implications for human health in rural Bengal. *Science of the total environment*, *497*, pp.200-208.

17. Han, Z., Salawu, O.A., Zenobio, J.E., Zhao, Y. and Adeleye, A.S., 2021. Emerging investigator series: immobilization of arsenic in soil by nanoscale zerovalent iron: role of sulfidation and application of machine learning. *Environmental Science: Nano*, *8*(3), pp.619-633.

18. IARC, W., 2006. IARC monographs on the evaluation of carcinogenic risks to humans: inorganic and organic lead compounds. Vol. 87. *World Health Organization, Lyon, France.*

19. Kumarathilaka, P., Seneweera, S., Meharg, A. and Bundschuh, J., 2018a. Arsenic accumulation in rice (Oryza sativa L.) is influenced by environment and genetic factors. *Science of the total environment*, *642*, pp.485-496.

20. Kumarathilaka, P., Seneweera, S., Meharg, A. and Bundschuh, J., 2018b. Arsenic speciation dynamics in paddy rice soil-water environment: sources, physico-chemical, and biological factors-a review. *Water research*, *140*, pp.403-414.

21. Li, B., Zhou, S., Wei, D., Long, J., Peng, L., Tie, B., Williams, P.N. and Lei, M., 2019. Mitigating arsenic accumulation in rice (Oryza sativa L.) from typical arsenic contaminated paddy soil of southern China using nanostructured α-MnO2: Pot experiment and field application. *Science of the Total Environment*, *650*, pp.546-556.

22. Li, H., Chen, X.W. and Wong, M.H., 2016. Arbuscular mycorrhizal fungi reduced the ratios of inorganic/organic arsenic in rice grains. *Chemosphere*, *145*, pp.224-230.

23. Liao, X.Y., Chen, T.B., Xie, H. and Liu, Y.R., 2005. Soil As contamination and its risk assessment in areas near the industrial districts of Chenzhou City, Southern China. *Environment International*, *31*(6), pp.791-798.

24. Mandal, B.K. and Suzuki, K.T., 2002. Arsenic round the world: a review. *Talanta*, *58*(1), pp.201-235.

25. Mandal, U., Singh, P., Kundu, A.K., Chatterjee, D., Nriagu, J. and Bhowmick, S., 2019. Arsenic retention in cooked rice: effects of rice type, cooking water, and indigenous cooking methods in West Bengal, India. *Science of the total environment*, *648*, pp.720-727.

26. Mazumder, D.N.G., Haque, R., Ghosh, N., De, B.K., Santra, A., Chakraborti, D. and Smith, A.H., 2000. Arsenic in drinking water and the prevalence of respiratory effects in West Bengal, India. *International journal of epidemiology*, *29*(6), pp.1047-1052.

27. Meng, X.Y., Qin, J., Wang, L.H., Duan, G.L., Sun, G.X., Wu, H.L., Chu, C.C., Ling, H.Q., Rosen, B.P. and Zhu, Y.G., 2011. Arsenic biotransformation and volatilization in transgenic rice. *New Phytologist*, *191*(1), pp.49-56.

28. Mihucz, V.G., Silversmit, G., Szalóki, I., De Samber, B., Schoonjans, T., Tatár, E., Vincze, L., Virág, I., Yao, J. and Záray, G., 2010. Removal of some elements from washed and cooked rice studied by inductively coupled plasma mass spectrometry and synchrotron based confocal micro-X-ray fluorescence. *Food Chemistry*, *121*(1), pp.290-297.

29. Mihucz, V.G., Virág, I., Zang, C., Jao, Y. and Záray, G., 2007. Arsenic removal from rice by

washing and cooking with water. *Food Chemistry*, *105*(4), pp.1718-1725.

30. Mishra, S., Dwivedi, S., Kumar, A., Chauhan, R., Awasthi, S., Mattusch, J. and Tripathi, R.D., 2016. Current status of ground water arsenic contamination in India and recent advancements in removal techniques from drinking water. *International Journal of Plant and Environment*, *2*(1 and 2), pp.01-15.

31. Mitra, A.K., Bose, B.K., Kabir, H., Das, B.K. and Hussain, M., 2002. Arsenic-related health problems among hospital patients in southern Bangladesh. *Journal of Health, Population and Nutrition*, pp.198-204.

32. Morales, K.H., Ryan, L., Kuo, T.L., Wu, M.M. and Chen, C.J., 2000. Risk of internal cancers from arsenic in drinking water. Environ Health Perspect 108: 655–661.

33. Mukherjee, A., Kundu, M., Basu, B., Sinha, B., Chatterjee, M., Bairagya, M.D., Singh, U.K. and Sarkar, S., 2017. Arsenic load in rice ecosystem and its mitigation through deficit irrigation. *Journal of environmental management*, *197*, pp.89-95.

34. Mwale, T., Rahman, M.M. and Mondal, D., 2018. Risk and benefit of different cooking methods on essential elements and arsenic in rice. *International journal of environmental research and public health*, *15*(6), p.1056.

35. Naito, S., Matsumoto, E., Shindoh, K. and Nishimura, T., 2015. Effects of polishing, cooking, and storing on total arsenic and arsenic species concentrations in rice cultivated in Japan. *Food chemistry*, *168*, pp.294-301.

36. Pandey, P.K., Yadav, S., Nair, S. and Bhui, A., 2002. Arsenic contamination of the environment: a new perspective from central-east India. *Environment International*, *28*(4), pp.235-245.

37. Pedron, T., Segura, F.R., Paniz, F.P., de Moura Souza, F., dos Santos, M.C., de Magalhães Júnior, A.M. and Batista, B.L., 2019. Mitigation of arsenic in rice grains by polishing and washing: Evidencing the benefit and the cost. *Journal of cereal science*, *87*, pp.52-58.

38. Pogoson, E., Carey, M., Meharg, C. and Meharg, A.A., 2021. Reducing the cadmium, inorganic arsenic and dimethylarsinic acid content of rice through food-safe chemical cooking pre-treatment. *Food Chemistry*, *338*, p.127842.

39. Raab, A., Baskaran, C., Feldmann, J. and Meharg, A.A., 2009. Cooking rice in a high water to rice ratio reduces inorganic arsenic content. *Journal of Environmental Monitoring*, *11*(1), pp.41-44.

40. Rahaman, S. and Sinha, A.C., 2013. Water regimes: an approach of mitigation arsenic in summer rice (Oryza sativa L.) under different topo sequences on arsenic-contaminated soils of Bengal delta. *Paddy and Water Environment*, *11*(1), pp.397-410.

41. Rahman, M., 2002. Arsenic and contamination of drinking-water in Bangladesh: a public-health perspective. *Journal of Health, Population and Nutrition*, pp.193-197.

42. Rahman, M.A., Hasegawa, H., Rahman, M.M., Rahman, M.A. and Miah, M.A.M., 2007. Accumulation of arsenic in tissues of rice plant (Oryza sativa L.) and its distribution in fractions of rice grain. *Chemosphere*, *69*(6), pp.942-948.

43. Roychowdhury, T., Uchino, T., Tokunaga, H. and Ando, M., 2002. Survey of arsenic in food composites from an arsenic-affected area of West Bengal, India. *Food and Chemical Toxicology*, *40*(11), pp.1611-1621.

44. Sanchez, T.R., Perzanowski, M. and Graziano, J.H., 2016. Inorganic arsenic and respiratory health, from early life exposure to sex-specific effects: A systematic review. *Environmental research*, *147*, pp.537-555.

45. Senanayake, N. and Mukherji, A., 2014. Irrigating with arsenic contaminated groundwater in West Bengal and Bangladesh: A review of interventions for mitigating adverse health and crop outcomes. *Agricultural water management*, *135*, pp.90-99.

46. Seyfferth, A.L., Morris, A.H., Gill, R., Kearns, K.A., Mann, J.N., Paukett, M. and Leskanic, C., 2016. Soil incorporation of silica-rich rice husk decreases inorganic arsenic in rice grain. *Journal of Agricultural and Food Chemistry*, *64*(19), pp.3760-3766.

47. Sharafi, K., Yunesian, M., Mahvi, A.H., Pirsaheb, M., Nazmara, S. and Nodehi, R.N., 2019. Advantages and disadvantages of different pre-cooking and cooking methods in removal of essential and toxic metals from various rice types-human health risk assessment in Tehran households, Iran. *Ecotoxicology and environmental safety*, *175*, pp.128-137.

48. Signes, A., Mitra, K., Burló, F. and Carbonell-Barrachina, A.A., 2008. Effect of two different rice dehusking procedures on total arsenic concentration in rice. *European Food Research and Technology*, *226*(3), pp.561-567.

49. Smith, A.H., Lingas, E.O. and Rahman, M., 2000. Contamination of drinking-water by arsenic in Bangladesh: a public health emergency. *Bulletin of the World Health Organization*, *78*, pp.1093-1103.

50. Srivastava, A.K., Hasan, S.K. and Srivastava, R.C., 2001. Arsenicism in India: dermal

lesions and hair levels. *Archives of environmental health*, *56*(6), p.562.

51. Srivastava, S., Upadhyay, M.K., Tripathi, R.D. and Dhankher, O.P., 2016. Arsenic transport, metabolism and toxicity in plants. *International Journal of Plant and Environment*, *2*(1 and 2), pp.17-28.

52. Tripathi, R.D., Kumar, A., Dwivedi, S., Chauhan, R., Tripathi, P., Adhikari, B. and Dhara, M.C., Nautiyal, C.S., 2015. Characterization of rice germplasms for sufficient selenium and low arsenic accumulation in grains. *International Journal of Plant and Environment*, *1*(01), pp.31-42.

53. Williams, P.N., Price, A.H., Raab, A., Hossain, S.A., Feldmann, J. and Meharg, A.A., 2005. Variation in arsenic speciation and concentration in paddy rice related to dietary exposure. *Environmental science & technology*, *39*(15), pp.5531-5540.

54. Yan, S., Wu, F., Zhou, S., Yang, J., Tang, X. and Ye, W., 2021. Zinc oxide nanoparticles alleviate the arsenic toxicity and decrease the accumulation of arsenic in rice (Oryza sativa L.). *BMC plant biology*, *21*(1), pp.1-11.

55. Zhang, F., Gu, F., Yan, H., He, Z., Wang, B., Liu, H., Yang, T. and Wang, F., 2020. Effects of soaking process on arsenic and other mineral elements in brown rice. *Food Science and Human Wellness*, *9*(2), pp.168-175.

56. Zhao, F.J., Ma, J.F., Meharg, A.A. and McGrath, S.P., 2009. Arsenic uptake and metabolism in plants. *New Phytologist*, *181*(4), pp.777-794.

पांच भारतीय वैज्ञानिक जिन्होंने भारत में रहकर अपने शोध क्षेत्र को दिया नया आयाम।

पांच भारतीय मूल के वैज्ञानिक जिन्होंने विदेश में काम किया और अपने शोध क्षेत्र को नई दिशा दी।

Science

Extraterrestrial Radiation Dynamics Over Mango Orchards

❑ Tarun Adak, Vinod Kumar Singh and Naresh Babu

Scientific analysis of extraterrestrial radiation in any sites is a pre-requisite for gaining knowledge on its dynamics. The radiation which is being received at a particular zone is to be estimated for linking climate change studies. The vast area of mango orchards in Rehmankhera, Malihabad, Lucknow, Uttar Pradesh provides livelihood opportunities to fruit growers. Farmers are sincerely engaged in orchard management for which timely bound cultural operations are needed. It has been observed that the extraterrestrial radiation varied from 21.78 to 40.73 MJ/m^2/day over mango orchards. The summer (32.8 to 40.68 MJ/m^2/day), monsoon (28.94 to 40.14 MJ/m^2/day) and winter (22.04 to 27.53 MJ/m^2/day) months had different levels of radiation attrival. Histographic diagram showed widespread variability over the region. Researchers and scientists across the globe are interested for climate change analysis for which radiation dynamics was also taken into consideration. In case of simulation studies, radiation and radiation use efficiency were considered as important inputs for characterizing the role of management cum weather interactions for food security. Adak *et al*. (2016) systematically and scientifically estimated heat use efficiency in Dashehari Mango. Food productivity, fruit production and soil-tree radiation interactions are of immense importance as weather over the region is changing. Therefore, these interactions would lead to a changed environment wherein fruit tree were supposed to alter their phenological behaviour. The response of critical phenophases was thus linked to radiation received over those periods. Many a times, it was felt needed to estimate the GPS based prediction system and also to develop apps for easy, portable and cost effective ways of estimating extraterrestrial radiation. All these scientific information would lead to broader aspect of understanding the sustainability of ecosystem services. Students should learn the standard methodology of estimating the extraterrestrial radiation at a specific location. Knowledge of earth-atmosphere interactions may enhance their capabilities to understand the atmospheric circulation *vis-à-vis* radiation effects. Students should keep in mind about important equation for the estimation of mean daily values of extraterrestrial radiation.

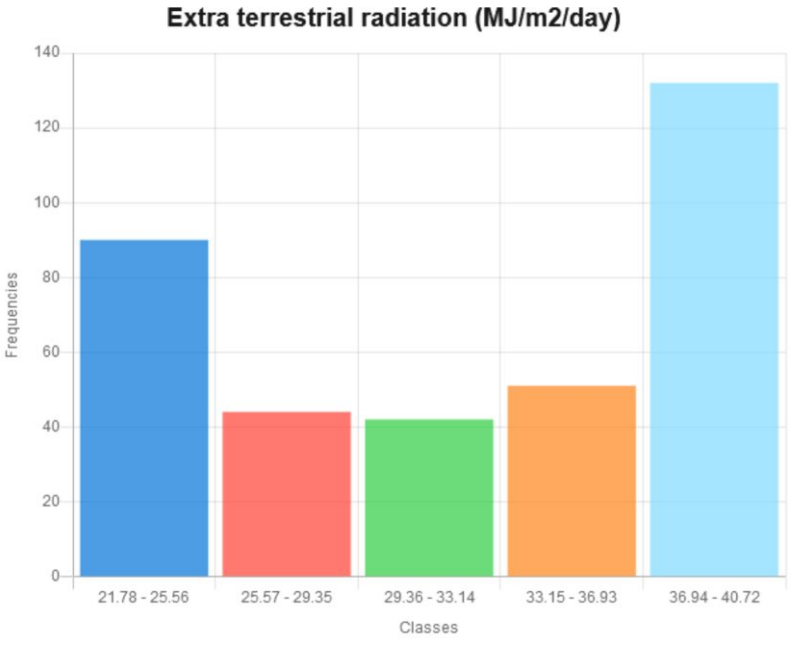

Fig. 1. Histographic distribution of Extra terrestrial radiation (MJ/m^2/day) over mango orchards of Rehmankhera, Lucknow location

ICAR- Central Institute for Subtropical Horticulture, Rehmankhera, Lucknow-226101, UP, India.
*Corresponding authors email: Tarun.Adak@icar.gov.in, Naresh.Babu@icar.gov.in, vinod.cish@gmail.com

Equation number 1:

$Ra = [(24\times60)/\pi \times Gsc \times dr \times \{Ws\times Sin(\Phi) \times Sin(\sigma) + Cos(\Phi) \times Cos(\sigma) \times Sin(Ws)\}]$

Ra = Extra terrestrial radiation ($MJ/m^2/day$), Gsc = Solar Constant = 0.082 $MJ/m^2/min$

dr = Inverse relative distance earth-sun,

Equation number 2: $dr = \{1+0.033 \times Cos(2\pi/365 \times J)\}$ Where J is the Julian day;

Ws = Sunset hour angle, Φ = Latitude (radian) σ = Solar declination

For Rehmankhera, Lucknow and the data of LAT: 26° 54' N, LONG: 80° 45' E, ALT: 127 m are considered for this scientific analysis.

Results of Ra over mango orchards of Rehmankhera, Lucknow indicated variations in frequency levels. It was inferred from the histographic diagram that maximum frequency distribution lies in 132% with class intervals of 36.94 to 40.72 $MJ/m^2/day$ followed by 90% in 21.78 - 25.56 $MJ/m^2/day$ classes (Fig. 1). In between 42, 44, 51% frequency levels with 29.36 - 33.14, 25.57 - 29.35 and 33.15 - 36.93 $MJ/m^2/day$ class intervals was recorded. The dr values varied between 0.97 to 1.03 (Fig. 4) and the Ws had 1.35 to 1.79 values across 1 to 365 Julian days (Fig. 5). Radiation influences on the tree phenology and its response, evapotranspiration significantly linked with soil moisture stress and tree water content. Therefore, irrigation application and precision farming in orchards are essentially dependent on the atmospheric-tree-soil interactions to optimize moisture conservation protocols. Fig. 2-3 clearly depicted the role of radiation regimes on the flowering and fruit set pattern as well as yield differences in mango. The radiation use efficiency under various ecosystems should be determined for the purpose of deriving strategy planning of climatic response and tree phenological changes to changed atmospheric environment over the decades. It was revealed that the flowering in mango had an impact as a function of these dynamics (Adak *et al.,* 2014). Fruit set could be different under various solar radiation regimes across agroecologies and differential fruit yield could be harvested and explained by scientific interventions at a particular place. Baek *et al.* (2012) scientifically analyzed the distribution of solar radiation in South Korea. Zarate-Valdez *et al.* (2015) found correlation of light interception with almonds yield prediction of course greater percentages with foliar nitrogen status were revealed. Interestingly, tree canopy models better provides better opportunity to enhance the efficacy of radiations through the modified canopy architecture *vis-à-vis* high yield and quality fruits in peach (Tang *et al.,* 2015). Even, information of long

Fig. 3. Mango yield at Rehmankhera, Lucknow location

Fig. 2. Differential flowering and fruit setting in Mango at Rehmankhera, Lucknow location

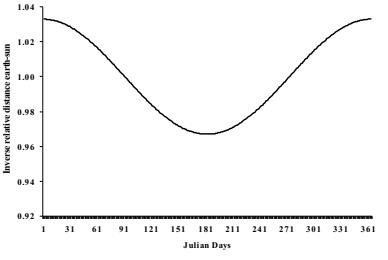

Fig. 4. Dynamics of dr ie. Inverse relative distance earth-sun at Rehmankhera location

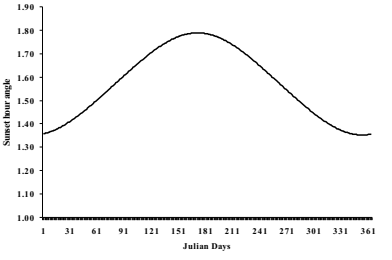

Fig. 5. Dynamics of Ws i.e. Sunset hour angle Rehmankhera location

term tree phenology helps in brings out the heat requirements of almond (Benmoussa *et al.,* 2017). Under the water stressed condition in partial root zone drying situation, the response of regimes alters the physiological responses of citrus also (Romero-Conde *et al.,* 2014). Thus, sensor application has tremendous scope in vast areas of agri-horticultural systems for efficient orchard management. Pierce and Elliott (2008) suggested wireless sensor networks for on-farm and regional agricultural systems as well in Eastern Washington. Riquelme *et al.* (2009) recommended the use of this network for precision horticulture in southern Spain. Even, irrigation management point of view, innovation of low cost weighing lysimeter is a boon for farmers (Ruiz-Peñalver *et al.,* 2015). Advanced technological outcomes in the form of mobile apps development for easy and cost effective estimation of extraterrestrial radiation would provide easy access of quality data and may be used in effective orchard practices, simulation studies and climate change impact analysis (Molina-Martinez *et al.*, 2011). Growers should be sensitizing to gain knowledge on radiation interception cum yield attenuation for canopy development of their orchards to obtain fruit production.

References:

Adak, T., Kumar, K. and Singh, V.K. 2016. Energy Summation Indices and Heat Use Efficiency in Mango cv Dashehari under Subtropical Indian Condition. *Journal of Agricultural Physics*, 16 (1&2): 71-79.

Adak, T., Singh, V. K. and Ravishankar, H. 2014. Radiation dynamics and agroclimatic models as a tool to predict impact of climate change on dynamics of flowering in mango. In: *Proceedings of national seminar-cum-workshop on "Physiology of flowering in perennial fruit crops*" held during May 24-26, 2014 at CISH, Lucknow, India. pp 66-68.

Baek, S.C., Park, J.H., Na, S.Il. and Park, J.K. 2012. Distribution of solar radiation including slope effect in South Korea, Proc. SPIE 8524, Land Surface Remote Sensing, 85242K (21 November 2012); https://doi.org/10.1117/12.977420.

Benmoussa, H., Ghrab, M.D., Mimoun, M.B. and Luedeling, E. 2017. Chilling and heat requirements for local and foreign almond (*Prunusdulcis Mill*) cultivars in a warm Mediterranean location based on 30 years of phenology records. *Agricultural and Forest Meteorology,* 239: 34-46.

Molina-Martinez, J.M., Jimenez-Buendía, M., Ruiz-Canales, A. and Fernandez-Pacheco, D.G. 2011. RaGPS: a software application for determining extraterrestrial radiation in mobile devices with GPS. *Computers and Electronics in Agriculture,* 78: 116-121.

Pierce, F.J. and Elliott, T.V. 2008. Regional and on-farm wireless sensor networks for agricultural systems in Eastern Washington. *Computers and Electronics in Agriculture,* 61(1):32-43.

Riquelme, J.A.L., Soto, F., Suardiaz, J., Sanchez, P., Iborra, A. and Vera, J.A. 2009. Wireless sensor networks for precision horticulture in southern Spain. *Computers and Electronics in Agriculture,* 68(1):25-35.

Romero-Conde, A., Kusakabe, A. and Melgar, J.C. 2014. Physiological responses of citrus to partial root zone drying irrigation. *Scientia Horticulturae,* 169: 234-238.

Ruiz-Peñalver, L., Vera-Repullo, J.A., Jiménez-Buendía, M., Guzmán, I. and Molina-Martínez, J.M. 2015. Development of an innovative low cost weighing lysimeter for potted plants: Application in lysimetric stations. *Agricultural Water Management,* 151: 103-113.

Tang, L., Hou, C., Huang, H., Chen, C., Zou, J. and Lin, D. 2015. Light interception efficiency analysis based on three-dimensional peach canopy models. *Ecological Informatics,* 30: 60-67.

Zarate-Valdez, J.L., MD., Saiful, Saa, S., Lampinen, B.D. and Brown, P.H. 2015. Light interception, leaf nitrogen and yield prediction in almonds: A case study. *European Journal of Agronomy* 66:1-7.

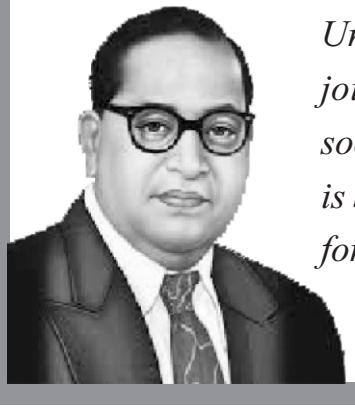

Unlike a drop of water which loses its identity when it joins the ocean, man does not lose his being in the society in which he lives. Man's life is independent. He is born not for the development of the society alone, but for the development of his self.

~ B. R. Ambedkar

Foldscope: An Eye Behind The Microscopic World

❑ Rahul Negi, Dr. Rahul Kunwar Singh*

HISTORY: BEHIND THE MICROSCOPIC WORLD

Microscopic organisms are known to us since the Vedic period, which remained unseen until the discovery of the microscope (Jakhmola, 2010). During 1st century AD, glasses were invented by Romans to examine the quality of fabrics. They had tested different glasses and found it helpful in magnifying the objects.

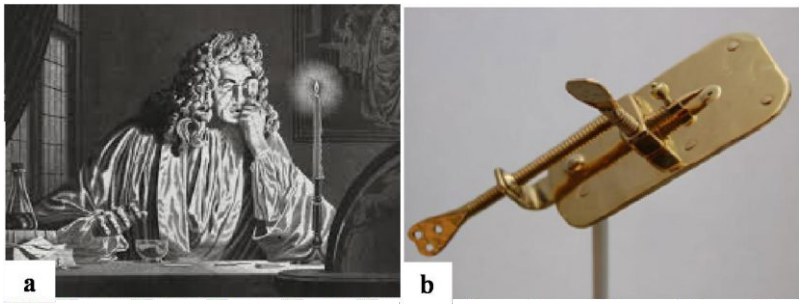

Figure-1

In the late 17th century, the Dutch draper Antony von Leeuwenhoek took interest in Rome's lenses and tested more than 500 lenses to observe the quality of fabrics as well as the unseen world around him. With these lenses, he could invent the simple microscope (**Figure 1)** that can magnify the things up to 270 fold (X) (Fields, 2019). Using this simple microscope, he could see the structures, such as blood cells and bacteria, which no one had seen before. Due to his contributions, Leeuwenhoek is regarded as "*Father of Microbiology*" (Karamanou et al., 2010).

Thereafter, many scientists made their contributions to the microscopic field and invented different types of microscope which improved the efficiency of the instrument to visualize the microscopic details of the tiny objects.

COMPOUND MICROSCOPE

In 17th century, the need of increasing the magnification power of simple microscope was realized. The use of lenses with short focal length would have solved the purpose but it could also affect the see-through of the lenses. The compound microscope was invented to overcome the low magnification power of simple microscopes. Besides better magnification, these microscopes do have better resolution limit also. The term resolution limit of a microscope refers to the "minimum distance at which two distinct points can be differentiated by it" (Davey, 2020).

Although the first compound microscope (**Figure 2)** was invented in 1590 by the Dutch glass manufacturer, Hans Jenssen, and his son, Zacharias Jenssen, but could not draw wide attention as it was not published (Davidson, 2009). Later, the English scientist, Robert Hooke showed his interest in the microscope and spent a lot of his time working with the microscope and observing many structures such as fly's eye, seeds, plant cell, etc. He published his findings in 1665 in the form of a book 'Micrographia' (Repossi, 2019; Bennett, 1989).

MODERN COMPOUND MICROSCOPE

Although compound microscopes were invented in the 17th century, but this was not enough to meet the aspirations of

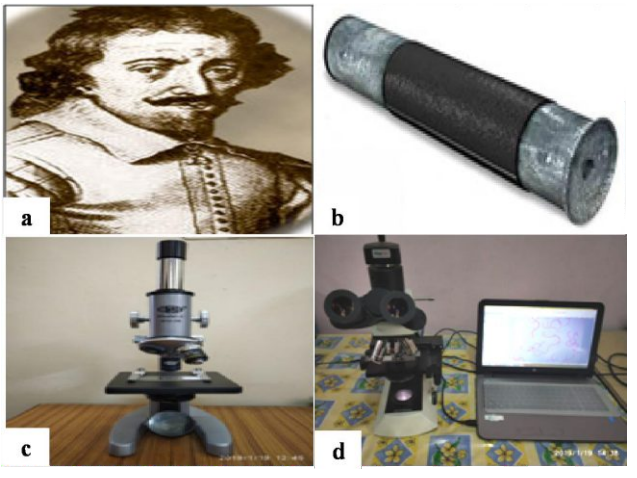

Figure-2

Cyano Biotech Lab, Department of Microbiology, School of Life Sciences, H.N.B. Garhwal University, Srinagar (Garhwal)-246174, Uttarakhand, India. Email : rksingh.hnb@gmail.com

microbiologists. To make it a more powerful instrument, it had been equipped with features such as multiple objective lenses (4 X, 10 X, 40 X or 100 X), reflecting mirrors, condensers, coarse and fine adjuster knobs as shown in **Figure 2**.

ADVANCED COMPOUND MICROSCOPE

These microscopes have built-in light source and imaging system in addition to the conventional compound microscopes. Both stained and unstained objects and substances can be easily seen with the aid of this microscope. Moreover, these microscopes are fitted with digital camera and computer, as seen in **Figure 2**, to capture and store the photomicrographs of the objects. However, these microscopes have some limitations in visualizing the unstained live objects that cannot be clearly distinguished. More sophisticated microscopes were therefore developed to troubleshoot this problem.

PHASE CONTRAST MICROSCOPE

In 1934, the Dutch physicist Frits Zernicke invented a phase-contrast microscope as shown in **Figure 3**. This device allowed the researchers to capture high contrast images of transparent biological materials (Zernike, 1942). In order to improve the contrast of the sample, the system uses a phase difference between the scattered light from different sections of the sample, which can also be improved by staining the samples with high contrast material, such as sliver and gram's stain. On the other hand, the further advancement in microscopy came with invention of fluorescence microscopes.

FLOURESENSE MICROSCOPE

The significance of fluorescence was first realized by Oskar Heimstaedt who described the Flourescence microscope (**Figure 4)** in 1911 (Kasten, 1989). In traditional fluorescence microscopy, the sample is illuminated and the light emanating from it is collected to visualize the object. Most of the collected light is from parts of the sample that are out of focus and its range of resolution reaches 230-30 nm (Wollman et al., 2015). For more advanced illumination, confocal microscopy came into operation.

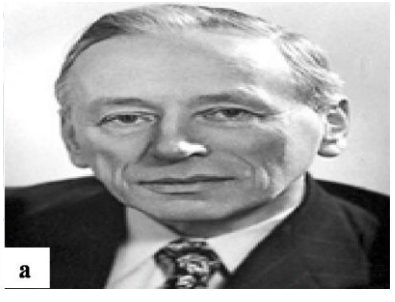

Figure-3

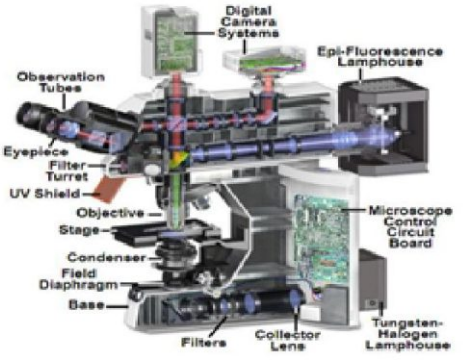

Figure-4

CONFOCAL MICROSCOPE

Fluorescence optics is used in the Confocal Microscope (**Figure 5)** also. However, instead of lighting the entire sample at once, the laser light is centered on a given spot at a particular depth within the sample. This contributes to the emission of fluorescent light at this very stage.

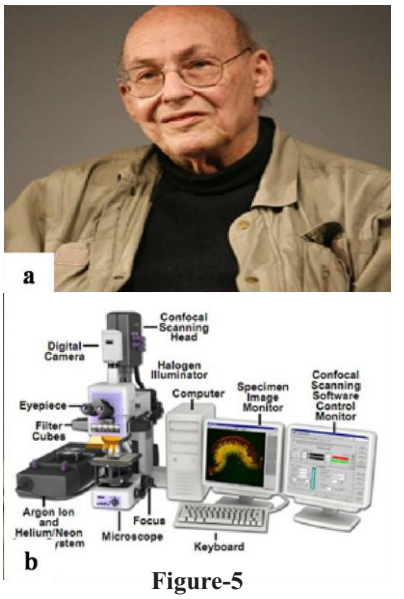

Figure-5

The pinhole in the optical path cuts off signals that are out of sight, enabling the light detector to enter only the fluorescence signals from the illuminated spot. It also allows for optical sectioning and three-dimensional reconstruction, so even with the dense specimen, it gives us crisp images. Marvin Minsky was the first to invent confocal microscope in 1957 (Robinson, 2001).

ELECTRON MICROSCOPE

In 1931, Max Knoll and Ernst Ruska discovered that electron beams can be used in microscopy rather than light. In 1938, the first commercial Electron microscope (**Figure 6)** was built. These microscopes could be used to view structures which cannot be seen using light microscopes. Transmission electron microscopy (TEM) was the early version that was used as an electron microscope with resolution limit of 100 pm. In 1965, the first Scanning electron microscope (SEM) entered the market, with resolution limit of 50 pm. The invention of electron microscopes revolutionized the field of biological materials science with incredibly high magnification and resolution.

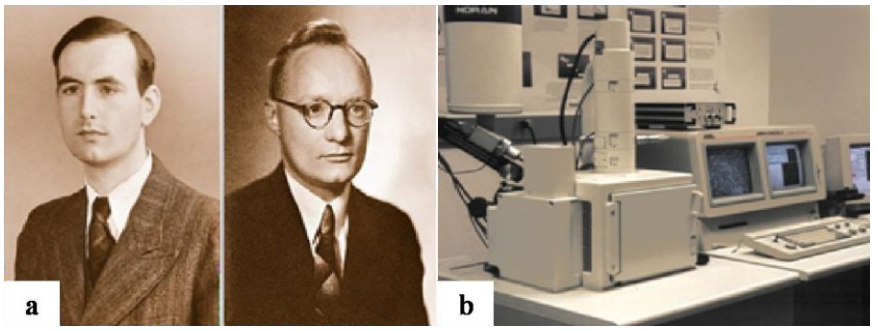

Figure-6

Over the time, the efficiency of microscopes improved and so as its size, cost, maintenance and fragility. Thus, the handling and operation of microscopes became difficult for the new researchers or the beginners. These problems have contributed to the idea of a handy microscope.

IDEA BEHIND INVENTION OF FOLDSCOPE

The limited availability, delicacy and cost of the microscopes were realized by Manu Prakash and his research student Jim Cybulski during one of their field visit. They could not get the microscope during the visit as the microscope they carried was broken during the voyage and were not appropriate for study (Foldscope Instruments Inc., 2018). To troubleshoot such problems, they constructed a handy microscope using origami paper and micro-lenses, which was very similar to Leeuwenhoek's microscope. As the instrument was made by folding the paper, it was named as Foldscope**.**

The Foldscope comes in the form of a puzzle on a sheet of paper that can be solved within seven minutes to make it a functional instrument. It may be easily kept in pocket and transported everywhere. Being made of paper, it is unbreakable. The samples mounted on either the glass or paper slides can be visualized with this instrument. The instrument uses sunlight as light source, while it may also be coupled with a LED light source for enhancing the object visualization **(Figure 7)**. Moreover, it may also be attached with cell phone using couplers for capturing the images and videos as well as for projecting the image on a screen. It has the magnification power of 140 X. In the nutshell, it is a modern version of the Leeuwenhoek's Microscope which is not only handy or cheaper, but also eco- friendly.

HISTORY OF FOLDSCOPE

Manu Prakash and his team began the project of making foldscope by combining "frugal science" and "origami" in November 2012 (Banerjee, 2018). The project was sponsored by many organizations including Bill & Melinda Gates Foundation, Washington, USA. The motivational goal around the project was to develop a best microscope under $1(Foldscope Instruments Inc., 2018).

In June 2014, the technology behind the development of Foldscope was published in PLoS ONE journal (Cybulski et al., 2014). In the same year, a pilot scale program financed by the Moore Foundation, California, USA, was launched for the distribution of over 60,000 Foldscope in more than 135 countries. In exchange for this, they were invited to publish their findings in the microcosmos community to popularize the Foldscope around the world. Foldscope Instruments, Inc. was founded in December 2015. The company was of the opinion that the instrument should meet the curious people in each corner of the world. In this regard, they set their target of distributing one million Foldscope by the end of 2018.

FOLDSCOPE IN INDIA

In September 2015, Department of Biotechnology (DBT), Government of India, signed an agreement with Manu Prakash Lab at Stanford University, USA, to bring the Foldscope in India and to stimulate the scientific curiosity of Indian students. Foldscopes were distributed to many college students and a series of workshops were conducted across India in December 2015 to popularize this handy instrument. In May 2017, DBT announced a program "Foldscope as a Research Tool" to provide financial assistance to the scientists and teachers across India. In March 2018, more than three hundred curios scientists got approval for the use of Foldscope for various purposes under the program. They have been given various forums to share their ideas and observations about science, such

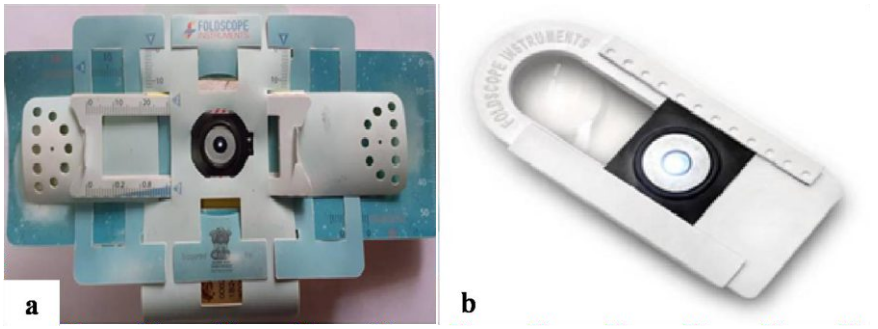

Figure-7

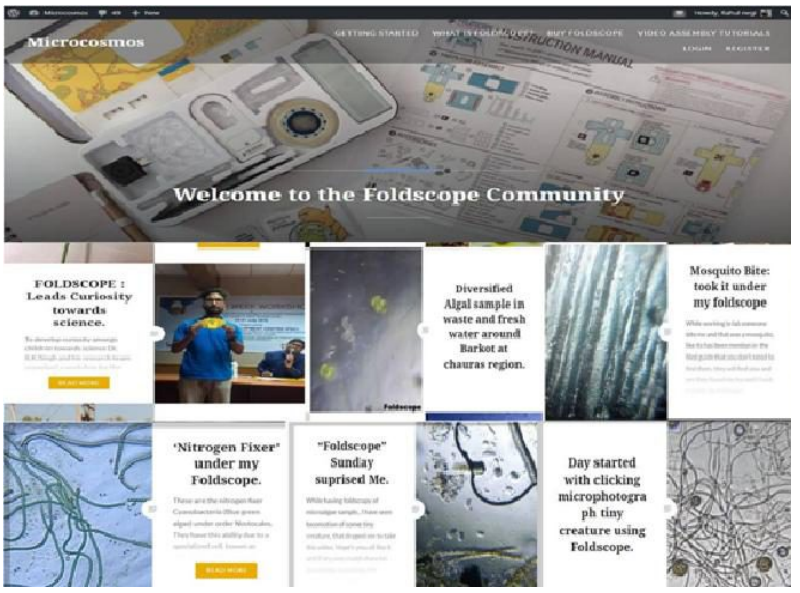

Figure-8

as organizing workshops and sharing their experiences on the website *microcosmos.foldscope.com*. In the same programme, the authors could also get the opportunity to use Foldscope and shared some of our experiences on the internet (**Figure 8).**

PROS AND CONS

There are few reasons behind the advancement of Foldscope in scientific world. It is a type of modern portable compound microscope that is inexpensive, simple to operate, light weighted and can be used with cell phones to take live images on sampling sites. **Figure 9** shows the photomicrographs of cyanobacterial samples captured with Foldscope and a compound microscope (Nikon 6 model) generally used in our classrooms. From the comparison of these images, it is clear that Foldscope can be used in classroom laboratories for teaching the diversity of microscopic world. However, it cannot be used for identification of the small microorganisms like bacteria, until the improvement of its magnification power.

According to the Foldscope field guide, it can be used to see various unicellular and multicellular organisms like microalgae, parasites, blood cells, arthropods and plant cells. Thus, it can be used to diagnose parasitic diseases, to check the pest contamination in soil as well as to determine the food quality. (Banerjee, 2018).

CONCLUSION

There is no doubt that science seems to go beyond the limits of human beings. In support of the microscopic world, Foldscope is a major groundbreaking and imaginative invention. Everyone as a student needs the cheapest, compact, and easy-to-use instrument, and all of this is possible through this. It could also generate curiosity among students towards microscopic science. Everyone could enjoy the microscopic world around them in future using Foldscope without any obstacles. Hence, the colleges and science institutions should take leading steps towards the invention and use of origami paper based instrument like Foldscope. It will give the opportunity to the students as well as citizen scientists for enjoying sciences, not be afraid of it.

ACKNOWLEDGEMENT

The authors are thankful to Department of Biotechnology, Government of India, for financial support in form of Foldscope Grant

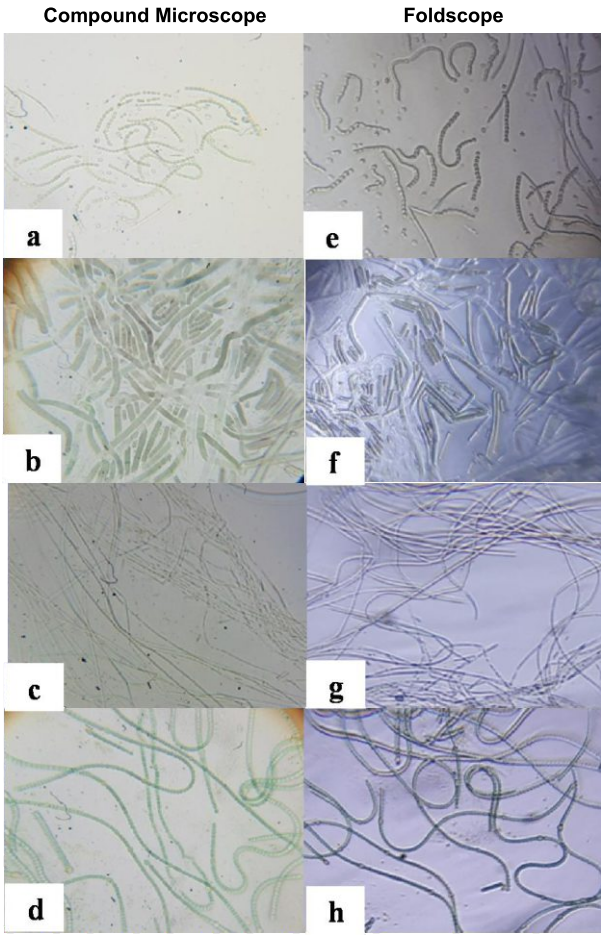

Figure-9

under Category B and Head, Department of Botany and Microbiology, H.N.B. Garhwal University, Srinagar (Garhwal), India for providing the necessary facilities.

REFERENCES:

1. Banerjee, S. (2018). Foldscope, the frugal innovation and its application in food microscopy-a review. *Acta Scientific Nutritional Health*, *2*(6), 53-54.
2. Bennett, J. A. (1989). The social history of the microscope. *Journal of Microscopy*, *155*(3), 267-280.
3. Cybulski, J. S., Clements, J., Prakash, M. (2014). Foldscope: origami-based paper microscope. *PloS ONE*, *9*(6), e98781.
4. Davey, R. (2020). Portable microscopes: advantages and disadvantages. News-Medical. www.news-medical.net/life-sciences/Portable-Microscopes-Advantages-and-Disadvantages.aspx
5. Davidson, M. W. (2009). Pioneers in optics: Zacharias Janssen and Johannes Kepler. *Microscopy Today*, *17*(6), 44-47.
6. DBT-India, (2018). Microscopy for all: DBT brings Foldscope to underprivileged children, www.dbtindia.gov.in/
7. Fields, D. (2019). Brief History of microscopy. News-Medical. https://www.news-medical.net/life-sciences/Brief-History-of-Microscopy.aspx
8. Foldscope Instruments Inc. (2018) Our story, www.foldscope.com
9. Jakhmola, R. (2010). Micro-organisms in Vedas. *Ayu* 31(1), 114-120.doi: 10.4103/0974-8520.68188
10. Karamanou, M., et al. (2010) Anton van Leeuwenhoek (1632-1723): father of micromorphology and discoverer of spermatozoa. *Revista Argentina de microbiologia* 42(4), 311-314. doi: 10.1590/S0325-75412010000400013
11. Kasten, F. H. (1989). The origins of modern fluorescence microscopy and fluorescent probes. In: Kohen E (Ed) *Cell structure and function by microspectrofluorometry*. Academic Press, USA. pp. 3-50. doi: 10.1016/C2013-0-10983-X
12. Kriss, T. C., Kriss, V. M. (1998). History of the operating microscope: from magnifying glass to micro neurosurgery. *Neurosurgery*, *42*(4), 899-907.
13. Repossi, P. (2019). Learning Optics from the History. *Journal of Physics: Conference Series* 1221, 012054.doi: 10.1088/1742-6596/1221/1/012054
14. Robinson, J. P. (2001). Principles of confocal microscopy. *Methods in cell biology*, *63*, 89-106.
15. Wollman, A. J., Nudd, R., Hedlund, E. G., & Leake, M. C. (2015). From animaculum to single molecules: 300 years of the light microscope. *Open biology*, *5*(4), 150019
16. Zernike, F. (1942). Phase contrast, a new method for the microscopic observation of transparent objects part II. *Physica*, *9*(10), 974-986.

Figure legends

Figure 1. The photograph of Antony von Leeuwenhoek (a) Leeuwenhoek's microscope and (b). Images adapted from

https://www.discovermagazine.com/ and https://www.quekett.org.

Figure 2. Photograph of Zacharias Jansen (a), First compound microscope (b), Modern compound microscope (c), Advanced Compound microscope (d).Images 'a' and 'b' adapted from https://micro.magnet.fsu.edu/ and https://www.visioneng.com, respectively. Images 'c' and 'd' were taken in Cyano Biotech Lab.

Figure 3. Photograph of Frits Zernicke (a), Phase-contrast microscope and path of light image in it (b). Images adapted from https://www.nobelprize.org and https://www.microscope.healthcare.nikon.com, respectively.

Figure 4. Image of a Flouresence Microscope. Image adapted from https://www.microscope.healthcare.nikon.com.

Figure 5. Photograph of Marvin Minsky (a), and confocal microscope with complete setup (b). Images adapted from Getty images and https://www.microscope.healthcare.nikon.com, respectively.

Figure 6. Photograph of Max Knoll (Left) and Ernst Ruska (Right) (a), Scanning Electron microscope setup (b). Images adapted from https://www.pinterest.com and https://serc.carleton.edu, respectively.

Figure 7. Photograph showing Foldscope (a), and LED Light magnifier (b) Images adapted from www.foldscope.com

Figure 8. Author's experiences with Foldscope shared on Foldscope website

microcosmos.foldscope.com.

Figure 9. Photomicrographs of different laboratory grown cyanobacteria captured with Compound microscope (Nikon 6 model) under 45X (A-D), and Foldscope (E-H).

Code : 396

ARYAKUL
GROUP OF COLLEGES

Code : 316

ARYAKUL COLLEGE OF PHARMACY AND RESEARCH

PCI Approved

B. PHARMA /M. PHARM
D. PHARM
DHP (Diploma in Homoeopathic Pharmacy)

ARYAKUL COLLEGE OF MANAGEMENT

MBA (2 YEARS) **PGDM**- 2 YEARS

bharti WAL-MART · INTAS · SAMSUNG · MARUTI SUZUKI · ICICI Bank · MAX · RELIANCE Communications · FUTURE GENERALI · RELIANCE Money · Heinz · idea · HDFC · HERO HONDA · IDBI BANK · ICICI PRUDENTIAL

ARYAKUL COLLEGE OF EDUCATION

- BBA (Bachelor of Business Administration) - 3 Years
- BA-JMC (Bachelor of journalism & Mass Comunication) - 3 Years
- MA-JMC (Master of journalism & Mass Comunication) - 2 Years
- B. COM. (Bachelor Of Commerce) - 3 Years
- B. ED. (Bachelor Of Education) - 2 Years
- D.EL.ED. (Diploma in Elementary Education Education) - 2 Years
- M. COM. (Master Of Commerce) - 2 Years

Toll Free 180030034242

Natkur, P.O. Chandrawal, Aryakul College Road
Adjacent to CRPF Base Camp, Lucknow-02 (4KMs from Amausi Air Port), UP, INDIA
Email: aryakulcollege@yahoo.co.in, Website: www.aryakulcollege.org

CONTACT : 9005092461 / 56 / 60 / 9415323205

IN CAMPUS HOSTEL WITH THE FACILITY OF RECREATION ROOM

TRANSPORT FACILITY AVAILABLE FROM VARIOUS POINTS OF THE CITY TO THE COLLEGE.

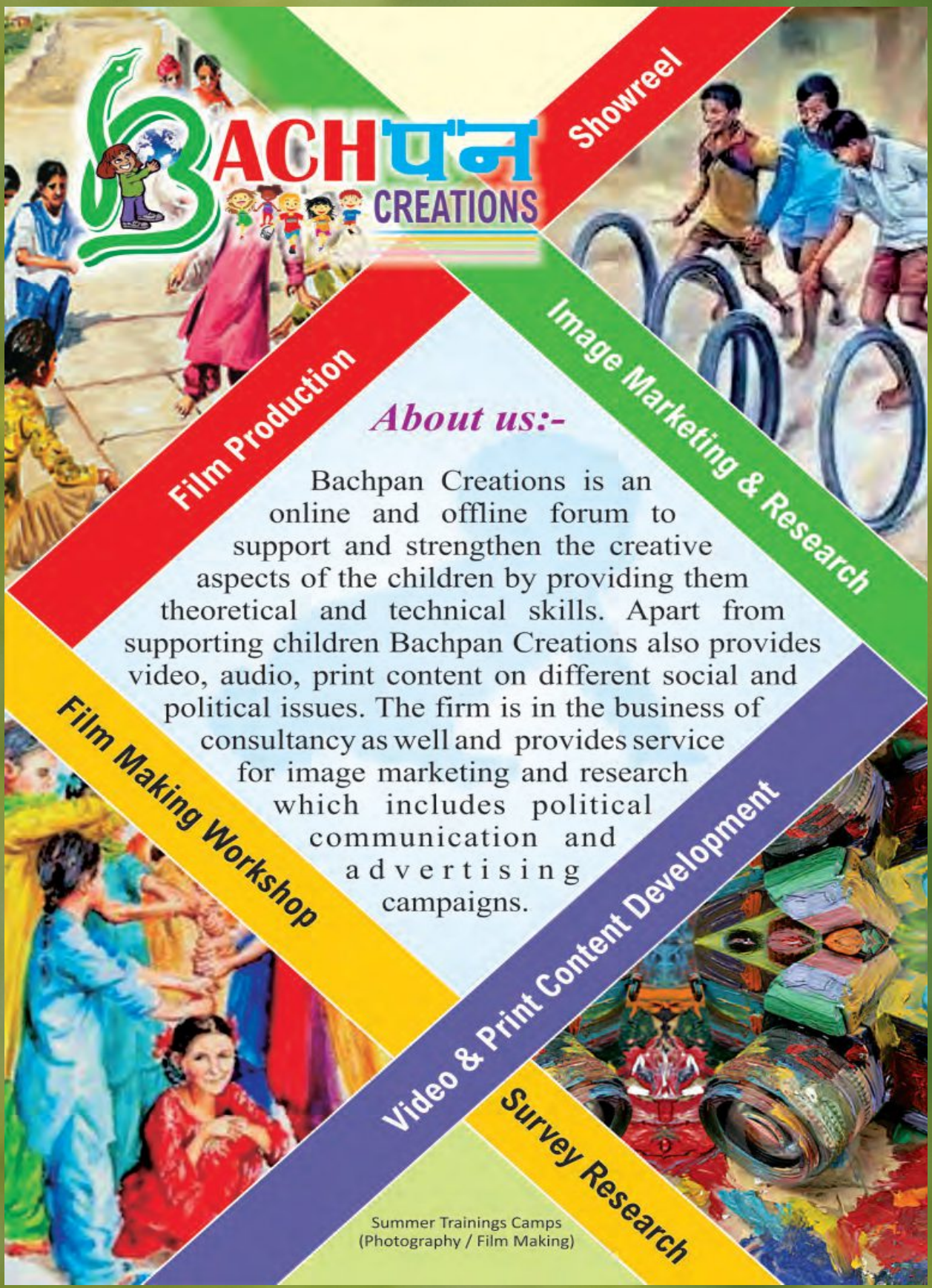

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

हेड आफिसः ई–998, रत्नाकर खण्ड, शारदा नगर, रायबरेली रोड, लखनऊ

E-mail: bachpanexpress@gmail.com, www.bachpanexpress.com, Mob.: 9198255566] 9580803904